प्रकाशक :
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
८, फ़ैज बाजार, दिल्ली-६

© १६६६, कृष्ण बलदेव वैद

कलापक्ष : हरिपाल त्यागी

प्रथम संस्करण, १६६६

मूल्य : [redacted] ४.२५

[illegible]
[illegible] दिल्ली-६

अजनबी

मैं सीढियाँ उतर रहा था। दरवाज़े के पास उसे देखकर एक थका हुआ-सा अस्पष्ट भ्रम मन में उठा, फिर एक मुस्कराहट मे कसकर रह गया। वह मेरी ओर पीठ किए खडी थी, और वहाँ मेरे कदमों की आहट का कोई खटका नहीं था। वहीं रुक जाने की ख्वाहिश हुई ताकि वह मेरी ओर देखे बग़ैर बाहर निकल जाए। फिर इस ख्वाहिश को भी एक मुस्कराहट ने उलझा दिया।

मैं उसके साथ उस शाम तीन बार नाच चुका था। पहली बार उसने आकस्मिक आत्मीयता और खीज से कहा था : 'तुम हिन्दुस्तानी नाचते समय इधर-उधर क्या देखते रहते हो? जानते हो इससे तुम्हारे साथी का कितना अनादर होता है?' मैंने चौंककर उसकी ओर देखा था और वह खिलखिलाकर हँस दी थी।

महसूस हुआ था जैसे किसी ने बहुत बेतकल्लुफ़ी से बड़े ज़ोर के साथ किसी बन्द दरवाज़े को झिंझोड़ दिया हो। हँसते हुए उसके शरीर का एक हल्का-सा स्पर्श पानी की लहर-सा मुझ तक पहुँचा था। मैं उसकी हँसी या उस स्पर्श मे शरीक नहीं हो पाया था, मानो उस बन्द दरवाज़े के भीतर से

रहा था, जैसे मैं आराम से पानी मे पड़ा बग़ैर किसी रुकावट के बह रहा होऊँ। मेरी आँखे इधर-उधर भटकने या उस पर जमी रहने के बजाय नीम-गनूदगी की हालत मे बन्द-सी हो गई थी। उस नशे मे उसके शरीर या उसकी उपस्थिति का कोई सहयोग नही था। कभी-कभी मैं वैसे ही, किसी का भी सहारा लिए बग़ैर, सब-कुछ भूल जाता हूँ। आजादी के ये क्षण बहुत गिने-चुने होते है। मैं उनकी प्रतीक्षा नही करता।

वह नाच खत्म होते ही हम अपने-अपने कोने मे जा खड़े हुए थे। अब मैं बार-बार उसकी ओर देखने की मजबूरी से मुक्त हो चुका था। बेगानगी का एक खुरदरा-सा खौल मेरे आस-पास तन गया था। उस खौल के भीतर मैं बहुत अकेला, बहुत अतृप्त, बहुत बेचैन, किन्तु बहुत सुरक्षित अनुभव कर रहा था। इस अनुभव मे मेरे लिए शान्ति और अशान्ति की मात्रा हमेशा बराबर की रहती है, मानो दोनो मे एक कड़ा और निर्मम समझौता हो गया हो, और वह खौल उस समझौते का निगहबान हो। वैसे पहले कभी-कभी वह समझौता टूट जाया करता था। लेकिन विदेश मे गुज़ारे उन पाँच-सात महीनो मे अभी तक उस कड़े पहरे मे किसी प्रकार की कोई शिथिलता नही आई थी। आस-पास के सब प्रहार पानी की तरह गुज़र जाते रहे थे। सारे प्रश्न सरसरी तरीके से आते थे और सरसरी जवाबो का खिराज वसूल करके लौट जाते थे। सब सम्बन्धो मे एक कारोबारी-सा बहाव और स्वच्छता थी। मुस्कराहटें एक झटके से रोशन होती थी और फिर उसी झटके से गुल हो जाती थी। किसी प्रकार की कोई ज़िद्द या रुकावट नही थी किसी से मिलने या न मिलने की, किसी बारे मे सोचने या तड़पते रहने की, लाचारी नही थी। सभी तरफ एक चकाचौंध धूप तनी हुई थी, जिसमे रुककर कही दम लेने की कमज़ोरी का सवाल ही नही उठता था। सब सवाल स्थगित हो चुके थे, या बहुत पीछे छूट गए थे, धीरे-धीरे फीके पड़ते जा रहे थे। बेगानगी का वह खुदरा-सा खौल आस-पास तना रहता था, और उसके भीतर बन्द मैं सुरक्षित था, किसी हद तक निश्चिन्त भी।

उस शाम की अन्तिम वाल्ज़ का एलान हो चुका था। लोग अपने-अपने

उसे देखकर कह दिया हो—इस दरवाज़े को तोड़ा ही जा सकता है। इ
विचार से असीम सुरक्षा और रिक्तता का अनुभव हुआ था।

फिर उसकी ओर एक कठोर दृढ़ता से देखते हुए महसूस किया था मानो किसी चुनौती को स्वीकार कर लेने से पहले का कठिन क्षण जमकर सामने खड़ा हो। सहसा यह विचार बहुत अप्रासंगिक अनुभव हुआ था। मुझे चौंका देने के बाद वह खुद अचानक अनुपस्थित हो गई थी। कुछ देर पहले की शरारत का स्थान एक खाली टिकटिकी ने ले लिया था, जिसमें टँ हुए शिष्टाचार के एक रंगीन चीथड़े को उतार लेना मानो वह भूल गई हो। वह अचानक अपने ही किसी शून्य में जा डूबी थी। मेरी नज़रें उसके चेहरे से उमड़कर फिर इधर-उधर बिखरने लगी थीं। मानो मैंने उसके साथ जा डूबने से इन्कार कर दिया हो। अपने इस इन्कार पर एक साथ असीम विरक्ति और गर्व का अनुभव हुआ था।

नाच खत्म होने तक उसने अपना वह मज़ाक दुहराया नहीं था। मुझे विश्वास था कि वह दुहराएगी भी नहीं। इस विश्वास की चुभन बहुत अरुचिकर प्रतीत होती रही थी।

o

दूसरी बार मैंने उसे हरगिज न कहा होता, अगर वह संयोग से मेरे बिल्कुल क़रीब न आ खड़ी होती। नाच शुरू हो चुका था। उसके चेहरे पर किसी मूक विनय की झलक पहचानकर मैंने उस पर एहसान कर दिया हो, ऐसी बात भी नहीं थी। वह नितान्त बेखबर खड़ी थी, डूबी हुई-सी। न चाहते हुए भी मैं बार-बार उसकी ओर देख रहा था और अपनी इस मजबूरी पर क्षुब्ध हो रहा था। मानो आँखों में कोई तिनका आकर अटक गया हो, जो न निकलता हो और जिसे न नज़र-अन्दाज़ किया जा सकता हो। वह चौंकी नहीं थी। बस चुपचाप मेरे साथ हो ली थी, जैसे किसी बात से कोई फ़र्क न पड़ता हो।

नाच के दौरान हम खामोश और एक-दूसरे से अलग रहे थे। लेकि उस खामोशी में किसी प्रकार का कोई तनाव नहीं था। मुझे महसूस होत

हा था, जैसे मैं आराम से पानी में पड़ा बग़ैर किसी रुकावट के बह रहा हूँ। मेरी आँखें इधर-उधर भटकने या उस पर जमी रहने के बजाय लोग-बुल्लों की हलचल में बन्द-सी हो गई थीं। उस नशे में उसके शरीर या उसकी उपस्थिति का कोई महत्त्व नहीं था। कभी-कभी मैं ऐसा हूँ, किसी का भी सहारा लिए बग़ैर, सब-कुछ भूल जाता हूँ। आज़ादी के ये क्षण बहुत गिने-चुने होते हैं। मैं उनकी प्रतीक्षा नहीं करता।

यह नाच ख़त्म होते ही हम अपने-अपने कोने में जा बैठे हुए थे। अब मैं बार-बार उसकी ओर देखने की मजबूरी से मुक्त हो चुका था। बेगानगी का एक गुदगुदा-सा खोल मेरे आस-पास तन गया था। उस खोल के भीतर मैं बहुत अकेला, बहुत अतृप्त, बहुत बेचैन, किन्तु बहुत सुरक्षित अनुभव कर रहा था। इस अनुभव में मेरे लिए शान्ति और अशान्ति की मात्रा हमेशा बराबर की रहती है, मानो दोनों में एक कड़ा और निर्मम समझौता हो गया हो, और वह खोल उस समझौते का निगहबान हो। जैसे पहले कभी-कभी यह समझौता टूट जाया करता था। लेकिन विदेश में गुज़ारे उन पाँच-सात महीनों में अभी तक उस कड़े पहरे में किसी प्रकार की कोई शिथिलता नहीं आई थी। आस-पास के सब प्रहार पानी की तरह गुज़र जाते रहे थे। सारे प्रश्न सरसरी तरीक़े से आते थे और सरसरी जवाबों का लिहाज़ क़बूल करके लौट जाते थे। सब सम्बन्धों में एक बातोंबाती-सा बहाव और स्वच्छता थी। मुस्कराहटें एक झटके से रोशन होती थीं और फिर उसी झटके से गुल हो जाती थीं। किसी प्रकार की कोई ज़िद या रुकावट नहीं थी किसी से मिलने या न मिलने की, किसी बारे में सोचने या तड़पते रहने की, लाचारी नहीं थी। सभी तरफ़ एक चकाचौंध धूप तनी हुई थी, जिसमें रुककर कहीं दम लेने की कमज़ोरी का सवाल ही नहीं उठता था। सब सवाल स्थगित हो चुके थे, या बहुत पीछे छूट गए थे, धीरे-धीरे फीके पड़ते जा रहे थे। बेगानगी का यह गुदगुदा-सा खोल आस-पास तना रहता था, और उसके भीतर बन्द मैं सुरक्षित था, किसी हद तक निश्चिन्त भी।

उस शाम की अन्तिम वाल्ज़ का एलान हो चुका था। लोग अपने-अपने

उसे देखकर कह दिया हो—इस दरवाज़े को तोड़ा ही जा सकता है। इस विचार से असीम सुरक्षा और रिक्तता का अनुभव हुआ था।

फिर उसकी ओर एक कठोर दृढ़ता से देखते हुए महसूस किया था मानो किसी चुनौती को स्वीकार कर लेने से पहले का कठिन क्षण जमकर सामने खड़ा हो। सहसा यह विचार बहुत अप्रासंगिक अनुभव हुआ था। मुझे चौंका देने के बाद वह खुद अचानक अनुपस्थित हो गई थी। कुछ देर पहले की शरारत का स्थान एक खाली टिकटिकी ने ले लिया था, जिसमें टँगे हुए शिष्टाचार के एक रंगीन चीथड़े को उतार लेना मानो वह भूल गई हो। वह अचानक अपने ही किसी शून्य में जा डूबी थी। मेरी नज़रें उसके चेहरे से उमड़कर फिर इधर-उधर बिखरने लगी थीं। मानो मैंने उसके साथ जा डूबने से इन्कार कर दिया हो। अपने इस इन्कार पर एक साथ असीम विरक्ति और गर्व का अनुभव हुआ था।

नाच खत्म होने तक उसने अपना वह मज़ाक दुहराया नहीं था। मुझे विश्वास था कि वह दुहराएगी भी नहीं। इस विश्वास की चुभन बहुत अरुचिकर प्रतीत होती रही थी।

* * *

दूसरी बार मैंने उसे हरगिज़ न कहा होता, अगर वह संयोग से मेरे बिल्कुल क़रीब न आ खड़ी होती। नाच शुरू हो चुका था। उसके चेहरे पर किसी मूक विनय की झलक पहचानकर मैंने उस पर एहसान कर दिया हो, ऐसी बात भी नहीं थी। वह नितान्त बेखबर खड़ी थी, डूबी हुई-सी। न चाहते हुए भी मैं बार-बार उसकी ओर देख रहा था और अपनी इस मजबूरी पर क्षुब्ध हो रहा था। मानो आँखों में कोई तिनका आकर अटक गया हो, जो न निकलता हो और जिसे न नज़र-अन्दाज़ किया जा सकता हो। वह चौंकी नहीं थी। बस चुपचाप मेरे साथ हो ली थी, जैसे किसी बात से कोई फ़र्क न पड़ता हो।

नाच के दौरान हम खामोश और एक-दूसरे से अलग रहे थे। लेकिन उस खामोशी में किसी प्रकार का कोई तनाव नहीं था। मुझे महसूस होता

रहा था, जैसे मैं आराम से पानी मे पड़ा बग़ैर किसी रुकावट के बह रहा होऊँ। मेरी आँखें इधर-उधर भटकने या उस पर जमी रहने के बजाय नीम-गनूदगी की हालत में बन्द-सी हो गई थीं। उस नशे मे उसके शरीर या उसकी उपस्थिति का कोई सहयोग नहीं था। कभी-कभी मैं वैसे ही, किसी का भी सहारा लिए बगैर, सब-कुछ भूल जाता हूँ। आज़ादी के ये क्षण बहुत गिने-चुने होते हैं। मैं उनकी प्रतीक्षा नही करता।

वह नाच ख़त्म होते ही हम अपने-अपने कोने मे जा खड़े हुए थे। अब मैं बार-बार उसकी ओर देखने की मजबूरी से मुक्त हो चुका था। बेगानगी का एक खुरदरा-सा खोल मेरे आस-पास तन गया था। उस खोल के भीतर मैं बहुत अकेला, बहुत अतृप्त, बहुत बेचैन, किन्तु बहुत सुरक्षित अनुभव कर रहा था। इस अनुभव मे मेरे लिए शान्ति और अशान्ति की मात्रा हमेशा बराबर की रहती है, मानो दोनो मे एक कड़ा और निर्मम समझौता हो गया हो, और वह खोल उस समझौते का निगहबान हो। वैसे पहले कभी-कभी वह समझौता टूट जाया करता था। लेकिन विदेश मे गुज़ारे उन पाँच-सात महीनो मे अभी तक उस कड़े पहरे मे किसी प्रकार की कोई शिथिलता नहीं आई थी। आस-पास के सब प्रहार पानी की तरह गुज़र जाते रहे थे। सारे प्रश्न सरसरी तरीके से आते थे और सरसरी जवाबो का खिराज वसूल करके लौट जाते थे। सब सम्बन्धों में एक कारोबारी-सा बहाव और स्वच्छता थी। मुस्कराहटें एक झटके से रोशन होती थी और फिर उसी झटके से गुल हो जाती थी। किसी प्रकार की कोई ज़िद या रुकावट नही थी किसी से मिलने या न मिलने की, किसी बारे मे सोचने या तड़पते रहने की, लाचारी नहीं थी। सभी तरफ एक चकाचौंध धूप तनी हुई थी, जिसमें रुककर कही दम लेने की कमज़ोरी का सवाल ही नही उठता था। सब सवाल स्थगित हो चुके थे, या बहुत पीछे छूट गए थे, धीरे-धीरे फीके पड़ते जा रहे थे। बेगानगी का वह खुदरा-सा खोल आस-पास तना रहता था, और उसके भीतर बन्द मैं सुरक्षित था, किसी हद तक निश्चिन्त भी।

उस शाम की अन्तिम वाल्ज का एलान हो चुका था। लोग अपने-अपने

[illegible]

[illegible]

[illegible] और उनके ऊपर फैले हुए काले आकाश को देखता रहा। फिर मुझे महसूस हुआ कि किसी अजनबी के साथ काफी देर तक चुपचाप बैठे रहकर खामोश बने रहना उस अजनबियत से [illegible] की एक बेमानी कोशिश है। मैंने कहा, 'मैं इस इलाके से नावाकिफ हूँ। आस-पास कितनी खामोशी है!' उसने शायद जवाब में सर हिला दिया हो, मैंने देखा नहीं। फिर मैंने कहा, 'मैं दरिया के उस पार रहता हूँ।' उसकी खामोशी ने जवाब दिया। 'शौक से रहो।' कुछ देर मैं दरिया के पार वाले अपने कमरे के बारे में सोचता रहा, जहाँ मुझे अक्सर नींद नहीं आती थी, जहाँ मैं उस समय लौटकर हरगिज नहीं जाना चाहता था। मैंने महसूस किया कि उस कमरे के बारे में सोचते-सोचते अनायास मैं भावुकता की ओर फिसलता जा रहा था। फिर

सहसा अपनी मकान-मालकिन की याद ने मुझे हँसा दिया।

उसने मेरी हँसी का कारण नहीं पूछा। शायद उसने सुना ही नहीं। पूछती तो बता पाने के बजाय मैं खुद उस कारण की तलाश में खो जाता। एक रात बहुत पी लेने के बाद मेरी मकान-मालकिन मेरे कमरे में घुस आई थी। बहुत देर तक मेरे नाचने के लिए जिद करती रही थी। फिर बार-बार किसी गाने की एक अधूरी लाइन गाती रही थी और मुझसे पूछती रही थी, 'हनी, तुम्हें वह गाना जरूर याद होगा? बहुत पुराना गाना है, तब हम जवान थे। याद है?' मैं कहता रहा था, 'मिसेज वारिंगटन, बहुत देर हो गई है, दूसरे लोग उठ जाएँगे तो···!' वह मुझे बीच में ही रोककर कह देती, 'दूसरे लोग? हनी, वे सब मर चुके हैं। अब सिर्फ़ तुम हो और मैं हूँ। तुम होश में हो, इसलिए मैं तुमसे पूछना चाहती हूँ कि तुम्हें वह गाना याद है?' फिर अचानक वह मेरे बिस्तर पर लेटकर रोने लगी थी। बीच-बीच में रुककर वह मेरी ओर देखती जैसे मुझे पहचान रही हो। मुझे महसूस होता रहा था, जैसे वह मुझसे कुछ कहना चाहती हो और शब्द उसकी जबान तक आकर रुक जाते हों। उसके बिखरे हुए सफ़ेद बाल, भरा हुआ अधेड़ शरीर और फड़फड़ाते होंठ। देखकर दहशत होती थी। दूसरे रोज उसने मेरे कमरे में एक पुरजा फेंक दिया था: 'मैं अपनी हरकत पर बहुत शर्मिन्दा हूँ।' उस याद ने न जाने क्यों मुझे उस समय हँसा दिया था। शायद मैंने सोचा हो कि वह उस हँसी का कारण पूछेगी और मैं वह किस्सा सुना लेने के बाद किसी निष्कर्ष का सहारा लेकर उसके करीब जा पहुँचूँगा। शायद मेरी वह अकारण हँसी अजनबियत को दूर करने की एक चाल मात्र थी: शायद भीतर कोई लालसा अभी तक बनी हुई थी।

●

मैंने फिर अपने-आपको कस लिया। खामोश रहने का फैसला किया। सोचा, अपनी यादों का गट्ठर उसके सामने नहीं खुलने दूँगा। थोड़ी दूर और चल लेने के बाद भी वह साथ रही, तो एक झटके से रुककर कोई बहाना बना लूँगा। और फिर तेज-तेज किसी और दिशा की ओर चल दूँगा। जाने

विचार से पैदा हुई झुंझलाहट पर गुस्सा आया। तो फिर वह इतनी दूर तक मेरे साथ क्यों चली आई? लेकिन वह शायद समझती हो कि मैं ही उसके साथ-साथ चलता आया हूँ, और अब शायद वह मुझसे पीछा छुड़ाने के लिए रुककर संकेत-सा दे रही है। लेकिन इतनी देर साथ रहने के बाद अलग होने से पहले मुझे कुछ तो कहना ही चाहिए! क्या? कुछ क्षण मैं इसी दुविधा में खड़ा रहा, और वह मेरे सामने किसी होटल के कमरे की तरह तटस्थ और बेजान खड़ी रही। मेरे पास उस कमरे को जगाने के लिए कुछ भी नही था।

फिर उसने धीरे-से कहा, 'तो चलो, वहाँ कहीं थोड़ी देर बैठेंगे। अब स्थिति साफ हो गई थी। मैं ही उसके साथ चल रहा था। लेकिन अपनी विजय पर उसकी चाल मे कोई अन्तर नही पड़ा था। वह अब भी खामोश कुछ आगे को झुकी हुई, अपने कदम गिनती हुई-सी, चल रही थी। मैं चाहता तो उसकी चाल मे विजय के सुरूर के बजाय किसी नए बोझ का आभास पा सकता। मैंने मन के एक झटके से अपने भीतर उठ रहे तमाम सवालों को स्थगित कर देने की कोशिश की और महसूस किया कि वे सब जल्दी से गडमड होकर एक पथरीले गोले की शक्ल मे बदल गए हैं। मैंने अपने-आप पर तरस खाते हुए एक लम्बी साँस ली। उसने मानो उस साँस का स्वर पहचान लिया हो। उसके चेहरे मे वैसी मुस्कराहट की सम्भावना क्षण-भर दिखाई नही दी थी। जवाब मे मैं भी उसी सरलता से मुस्करा दिया, और हमारी चाल का ढीलापन किसी कदर कम हो गया।

●

हम एक कैफेटेरिया के सामने जा पहुँचे थे। अन्दर रोशनी की धूप-सी खिली हुई थी, जिसमें बैठे लोग किसी शो केस की नुमाइशी डमियों से लगे। इतनी शाम बीत जाने पर उस खुली बेपर्दगी मे बैठने का खयाल बहुत नागवार गुजरा था। महसूस हुआ था कि वहाँ जाना किसी अखाड़े में उतर जाने के बराबर होगा। उसने मेरी मूक आपत्ति को पहचानते हुए कहा, 'थोड़ी दूर चलकर एक छोटा-सा बार है, वहाँ चल सकते हैं।' उसके लहजे

[illegible] आ गई थी। [illegible] दिया।
[illegible] नहीं।

[illegible] हुआ था। [illegible] महसूस हुआ, [illegible] आँखें [illegible] था। [illegible] कहा : 'तुम आकर यहाँ बैठो, मैं एक [illegible] हूँ।'

सुनकर महसूस हुआ जैसे वह मुझे अपने घर में ले आई हो।

बैठते ही मैंने एक ह्विस्की के लिए कह दिया। उसके [illegible] ओठों में [illegible] कुछ और [illegible] जाना पहचाना था।

मैंने आस-पास एक निगाह डाल दी। तीन आदमी काउण्टर पर बैठे हुए थे। सर झुकाए, जैसे कोई सजा भुगत रहे हों। उनमें से एक ने मुड़कर मेरी ओर देखा था। उसकी आँखें गड़ी हुई थीं, और चेहरे की खाल झुर्रियों से जैसे और अधिक कस गई हो। मुझे लगा, वह आदमी हर नये दाखिल को उसी तरह कसी हुई मुद्रा से एक नजर देख लेने के बाद फिर अपने गिलास पर झुक जाता होगा। तीनों की पीठों में एक साथ कमानीदार खम था। मैंने अन्दाज़ा लगाया वहीं बैठ-बैठकर उन तीनों ने अपनी सुविधा के लिए अपनी पीठों में वह खम डाल लिया था। जब वे वहाँ से उठते होंगे, तो एक अँगड़ाई लेकर उसे फिर सीधा कर लेते होंगे। मैंने फैसला किया वे तीनों रोज वहाँ बैठते हैं, बहुत देर तक खामोशी से पीते रहते हैं, बीच-बीच में उनका वह प्रतिनिधि हर नये आने वाले को एक नजर देख लेता है, और गई रात उठकर वे अपने-अपने घरों या कमरों में चले जाते हैं। अपने इस फैसले से मुझे बहुत तस्कीन हुई, जैसे मैंने बहुत सफ़ाई से किसी पार्सल को बन्द करके एक ओर फेंक दिया हो।

वेट्रेस ह्विस्की ले आई थी।

'और कुछ ?'

'अभी नहीं।'

मैंने उसकी आवाज़ से उसकी शक्ल उभारने की कोशिश की। वह चली गई, तो मैंने उसकी पीठ की ओर देखकर फ़ैसला किया कि वह बहुत रूखी और कारबारी मनोवृत्ति की होगी। यह सोचकर मुझे अच्छा लगा कि मैंने आँख उठाकर उसके चेहरे की ओर नहीं देखा था। मैंने एक पार्सल और बन्द कर दिया था।

सामने मेज़ पर एक जोड़ा आमने-सामने बैठा हुआ था। मुझे स्त्री के सुनहरे बाल नज़र आ रहे थे। वह अपने साथी से क़द में ज़रूर कुछ ऊँची होगी, या फिर बहुत तनकर बैठी होगी, जैसे कि कुछ स्त्रियाँ बैठती हैं, मानो किसी भी समय उठकर सीधी खड़ी हो सकती हों। उसका जिस्म बहुत सँवरा-सम्भला हुआ होगा। कहीं बाहर जाने से पहले वह काफ़ी समय सजने-धजने और सजाने में लगाती होगी और उसका यह प्रयास बेकार नहीं होता होगा। खाने से पहले और खाने के फ़ौरन बाद वह एक गाढ़ा-सुर्ख और संक्षिप्त चुम्बन उसके होंठों पर रखकर शाम या दिन-भर के लिए निश्चिन्त हो जाता होगा। हर शुक्र या शनीचर को वे दोनों अपने दो बच्चों को बेबी-सिटर के हवाले करके, सिनेमा, थियेटर या कन्सर्ट जाते होंगे। इस समय भी घर लौटने से पहले रात की तैयारी के तौर पर धीरे-धीरे अपना पहला और आख़िरी पेग पी रहे होंगे। हर इतवार को वे अपने बच्चों-समेत चर्च जाएँगे। वह सफ़ेद दस्ताने और कोई फूलदार-सा कीमती हैट पहने हुए होगी। चर्च से लौटते समय वे सब वहीं बैठकर एक-एक आइसक्रीम खाएँगे, और हल्के जाड़े में वे ठिठुरते हुए उनको धीमे पुचकार और चूमते घर जाएँगे। शायद कुछ देर के लिए वे पार्क के पास की सीढ़ियों पर बैठकर अपने बच्चों को इधर-उधर भागने के लिए खुला छोड़ दें। और फिर एक दिन अचानक वह स्त्री उस आदमी को तलाक़ देने पर तुल जाएगी, और वह आदमी हक्का-बक्का होकर पूछता रहेगा: "मेरा क़सूर क्या है?"

मुझे हँसी आ गई। मैं बहुत प्रसन्न हुआ था। मेरा दिमाग़ खाली था, और यह ख़्याल कुछ यों ही बाहर निकल रहे थे।

उसने भारी बरसाती कोट उतारकर अपनी कुर्सी को पहना दिया।

'[illegible] हूँ।'

[illegible] अन्दाज की [illegible] रहस्यमय [illegible] मैं [illegible] हूँ, [illegible] है। [illegible] है, और [illegible] नहीं हो पाती। [illegible] है। और [illegible] सन्देह बना रहता है। इसी सन्देह को दूर करने के लिए मैं बार-बार अपना [illegible] और [illegible] का विश्लेषण करता रहता हूँ और हर कोशिश के बाद [illegible] सन्देह और पक्का हो जाता है। [illegible] और [illegible] में [illegible] रही है। उनमें से एक [illegible] उन [illegible] की है जो इस अपेक्षा को पहचानने के लिए [illegible] है। मैं उनमें से एक हूँ।

ख्वाहिश हुई यह सब उसे बता दूँ। फिर साथ ही उस ख्वाहिश की तह में उसके सामने निरावरण होकर अपने लिए दया उभारने की कमजोरी दबी पड़ी दिखाई दे गई। दया तो उसे वैसे ही आ रही होगी? देखो, वह अभी तक मुस्करा रही थी। उसका एक हाथ धीरे-धीरे गिलास को घुमा रहा था, दूसरा उसकी बाईं आँख को मसल-सा रहा था। एक मुँदी आँख के साथ में उसकी वह मुस्कराहट मुझे बहुत क्रूर और खतरनाक प्रतीत हुई। वह शायद अभी तक अपने उस अन्दाज पर इतरा-सी रही थी, या शायद उसमें से और अन्दाज निकालती जा रही थी।

मेरी निगाह को भाँपकर उसने कहा : 'मैं शादीशुदा हूँ।'

हो सकता है यह केवल मेरा भ्रम ही हो, मुझे लगा उसने वाक्य के अन्त में जल्दी से एक आँख झपक दी थी। मुझे उसका यह संकेत कुछ अश्लील-सा लगा। लेकिन अब उसकी मुस्कराहट एकाएक गायब हो गई थी। मसली

हुई आँख अपनी असली हालत में आ जाने की कोशिश मे फड़फडा रही थी, और उसके चेहरे पर गम्भीरता की स्याह सुर्खी छा गई थी। मैंने अश्लीलता का आरोप वापस ले लिया।

'अभी-अभी मैंने अपने खाविन्द को फोन किया था।'

सुनकर मुझे कोई आश्चर्य नही हुआ। उसने ह्विस्की का आखिरी घूंट अपने मुंह मे उँडेल लिया। उसकी गदराई हुई बादामी गर्दन का सक्षिप्त-सा खिंचाव देखकर मैं कुछ सकपकाया। उसके शरीर को छूने की बहुत तीव्र ख्वाहिश से मेरा सारा बदन लरज उठा और होंठ झुलसकर रह गए। उसने जरूर इस प्रतिक्रिया को देखा होगा, लेकिन उसकी गम्भीरता मे कोई अन्तर नही आया। अगर शुरू से ही मैंने उसके शरीर को अपनी निगाहों और अन्दाजो का केन्द्र बनाया होता तो वह किसी सूरत मे मेरी उस प्रतिक्रिया के प्रति इतनी उदासीन न हो पाती। अगर शुरू से ही मैंने खुलकर उसके शरीर को देखा होता, तो शायद मैं अब तक उससे अभ्यस्त हो चुका होता, और लरज उठने और झुलसकर रह जाने की नौबत ही न आती। उसके साथ यहाँ तक घिसट आने के पश्चात्ताप के साथ एक पश्चात्ताप और जुड़ गया। इस नए पश्चात्ताप मे उसके शादीशुदा होने या *उसके खाविन्द की अनुपस्थिति का कोई हाथ नही था।* उस समय मैं केवल उसके शरीर को स्वीकार कर रहा था, उससे पराजित हो रहा था। अगर वही पराजय कुछ देर पहले स्वीकार कर ली होती तो···तो भी एक पश्चात्ताप के सिवा मेरे हाथ कुछ न आता। शारीरिक स्तर पर भी सफल हो पाने के लिए जिस एकाग्रचित्त लगन (या उसके स्वाँग) आत्मविश्वास आत्मविस्मरण और मूर्खता का जो सही और कारगर मिश्रण दरकार होता है, वह मुझमे नही है और उसका अभाव हमेशा से मुझे खटकता रहा है। कुछ देर तक इस अभाव के कई प्रमाणित परिणाम मेरी स्मृति को नोचते रहे।

'जानते हो, तुम्हारे साथ इस तरह यहाँ चले आना मेरे लिए एक बड़ी अहम घटना है?'

इस पर मैं चौंका। मेरे अपने जीवन मे वैसी अपाहिज घटनाएँ कई बार

हो चुकी थीं। उन्हींमें से एक का अन्त मेरी शादी में हो गया था। उस सारी शाम में पहली बार उस क्षण मैंने अपनी बीवी को याद किया और अनुभव किया कि उस याद में मेरे भीतर कोई सिहरन नहीं उठी थी। एक मुर्दा याद। मैंने एक ह्विस्की और मँगवा ली। उसने भी अपना गिलास आगे बढ़ा दिया।

'वैसे अकेली मैं यहाँ कई बार आ चुकी हूँ। हमेशा इसी मेज़ पर बैठती हूँ और सामने की दीवार की ओर देखती रहती हूँ। लेकिन आज सामने तुम हो। एक नई दीवार।'

और उसने अपनी भावुकता पर एक हँसी की ठण्डी राख डाल दी। मुझे लगा अपने उस तड़पा देने वाले बेरहम शरीर के बावजूद वह बेचारी भी अपनी ही किस्म की उलझी हुई, बदनसीब और लावारिस-सी औरत है। अपनी किस्म के लोगों से मुझे दहशत होती है। और साथ ही एक अजीब-सी हैरानी। मैं उसके अगले वाक्य के इन्तज़ार में मेज़ पर झुक आया। लेकिन मुझे मालूम था कि वह देर तक खामोश रहने के बाद ही कुछ कह पाएगी और जो कहेगी उससे असन्तुष्ट होकर फिर बहुत देर तक खामोशी से अन्दर-ही-अन्दर सुलगती रहेगी। उसकी तमाम मजबूरियों की कल्पना भली-भाँति कर सकता था। यह सोचकर मुझे कुछ निराशा हुई।

'बता सकते हो, क्या सोच रहे हो, इस समय ?'

'नहीं,' मैंने निस्संकोच कह दिया।

'क्यों ? बताना नहीं चाहते ?'

मुझे उसके प्रश्न से कुछ निराशा हुई।

'बता नहीं सकता।' मैंने एक-एक शब्द पर ज़ोर देते हुए कहा, और वह हँसी नहीं।

मैंने अपना गिलास उठा लिया। फिर उसे ज़रा और ऊपर उठाकर उसकी ओर देखते हुए दो-तीन बड़े-बड़े घूँट एक साथ पी लिए। वह अपने गिलास को धीरे-धीरे मेज़ पर घुमाती रही। अकेले बैठने पर भी वैसे ही गिलास को धीरे-धीरे घुमाती रहती होगी। मैंने आँखें बन्द करके उसे

७०३०

अकेले बैठे हुए देखा और महसूस किया जैसे मैं डूब रहा होऊँ ।

'मैं इस समय अपने बच्चों के बारे में सोच रही हूँ । वे मेरी इन्तजार में काफी देर तक जागते रहने के बाद अब सो गए होंगे । मैं जब कभी बाहर आती हूँ तो काफी देर से लौटती हूँ, और वे हमेशा बहुत देर तक मेरे इन्तजार में आपस में बातें करते रहते हैं । न जाने क्या बातें करते होंगे ?'

अपने बच्चों की बात वह बहुत सहज-सी गफलत के साथ कर गई थी, जैसे अकेली बैठी अपने-आपसे ही बोल रही हो, जैसे किसी सपने में ही उन्हें देख रही हो । इच्छा हुई कि कोई ऐसी बात करूँ जिससे उसका सपना टूट जाए । कोई ऐसी बात सूझी नहीं, और वह आँखें बन्द-सी किए अपने बच्चों को देखती रही । सोचा, जब कभी वह कहीं और डूबने को होती होगी, उन बच्चों की याद एक आखिरी सहारे की शक्ल में आ उपस्थित होती होगी । मैंने उन बच्चों की कल्पना करने की एक मरियल-सी कोशिश की, लेकिन मेरे सामने उसका दहकता हुआ जिस्म था । एक बार फिर उस जिस्म को छूने, वहशियों की तरह उसे मथने की उमंग ने बदहवास कर दिया । फिर किसी अपरिचित होटल का एक व्यक्तित्वहीन बन्द कमरा उस उमंग को निगल गया ।

'जब मैंने फोन किया था, तो वे अभी जाग रहे थे ।'

लगा जैसे उस वाक्य के साथ ही उसका खाविन्द हमारे बीच आ खड़ा हुआ हो । इच्छा हुई कि उससे पूछूँ उसका खाविन्द कैसा है, क्या काम करता है, जब वह लौटेगी तो वह उसकी इन्तजार में जाग रहा होगा या निराश होकर सो चुका होगा ? मैंने कल्पना करने की कोशिश की कि उसके बजाय अगर उसका खाविन्द मेरे सामने बैठा होता, तो मेरी क्या कैफियत होती । ख्वाहिश हुई कि उससे कह दूँ । 'चलो, तुम्हारे घर चलते हैं, मैं तुम्हारे खाविन्द से मिलना चाहता हूँ ।' फिर मैं उस मुलाकात की कल्पना में कुछ देर डूबा रहा और बहुत देर पहले पढ़े हुए किसी घटिया उपन्यास का एक दृश्य मेरी आँखों के सामने नाचता रहा । उस दृश्य से पीछा छुड़ाने के लिए ही मानो मैंने कहा, 'बहुत देर हो चुकी है ।'

उसने शायद सुना नहीं। बोली, 'तुम्हारे बच्चे हैं ?'

'नहीं,' मैंने सच बोला था।

उसे मानो हमारी इस असमानता पर किंचित् आश्चर्य-सा हुआ और मुझे न जाने क्यों ऐसा लगा कि अगर मैं कुछ देर और खामोश रहा, तो वह एक ठंडी आह भरकर कह देगी। 'तुम बहुत खुशकिस्मत (या बदकिस्मत) हो।'

मैंने जल्दी से कहा 'और ड्रिंक्स मंगवाएँ ?'

'मैं अपने बच्चों को बहुत प्यार करती हूँ।'

मुझे ऐसा महसूस हुआ कि वह बहुत देर से एक ही बात को दुहरा रही हो जैसे मुँह छिपाये और बात के लिए [illegible] हो, लेकिन बार बार [illegible] बाहर निकल आती हो।

उसने मानो मेरी [illegible] को पकड़ लिया हो। कुछ देर हम खामोश बैठे रहे। [illegible] कि हम [illegible] पास में [illegible] मैंने उसके [illegible] कुछ भी नहीं [illegible] था। आसपास [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

याद आया कि पहली बार सुनकर मैं चौंका था। तब हँसी नहीं आई थी। फिर याद आया एक ज़माना पहले मेरी बीवी ने भी इसी किस्म के किसी जुमले से मुझे चौंका दिया था। उस बरसों पुरानी शाम का वह दृश्य तेज़ी से मेरे सामने काँपकर एकाएक स्याह पड़ गया। बहुत देर तक वह स्याही मेरे चेहरे पर पुती रही होगी।

'तुम्हें कुछ याद आ रहा है,' उसने एक डाक्टराना आवाज़ में कहा।

'हाँ।' मेरे लहजे में अनावश्यक बेरुखी थी।

कुछ देर हम ख़ामोश बैठे रहे। लगा जैसे हर क्षण हमें किसी नई और ख़ौफ़नाक गहराई में डुबोता चला जा रहा हो। मुझे वह हमारा एक साथ डूबना अच्छा लग रहा था।

'मेरे ख़ाविन्द की तस्वीर देखोगे ?'

एक क्षण के लिए महसूस हुआ, जैसे उसने मेरा साथ झटक कर फिर अपना ही सहारा थाम लिया हो, और अब उस सहारे की खूँटी मेरी ओर बढ़ा दी हो। मैं जवाब में हँस दिया होता, लेकिन उसके चेहरे की मुँती हुई गम्भीरता से मैं कुछ सहम-सा गया। उसका हाथ बटुए में कुछ टटोल रहा था और आँखें मुझे बेध रही थीं। मैंने चुपचाप अपना हाथ मेज़ पर आगे की ओर सरका दिया।

उसके ख़ाविन्द की तस्वीर मेरे हाथ में थी। लेकिन मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था।

'यह तसवीर हमारी शादी से पहले की है। तब हम साथ-साथ पढ़ते थे।'

उसके लहजे में लगा जैसे वह देर तक कोई लम्बा किस्सा सुनाने जा रही हो। इस दुःसम्भावना से मेरे कान बहरे हो गए। वह कुछ देर तक बोलती रही, और मेरी उँगलियों में से पसीना फूट-फूटकर उस तस्वीर में जज़्ब होता रहा। हम एक-दूसरे की ओर ऐसे झुके हुए थे जैसे उस तस्वीर को बीच में रखकर कोई प्रार्थना-सी कर रहे हों। फिर सहसा उसने वह तस्वीर मेरे हाथ से ली, उसे कुछ देर ग़ौर से देखा, उसकी आँखें सिकुड़कर

दो नोंकदार बिन्दुओं में बदल गईं, और फिर उसने बहुत धीरे-धीरे उस तसवीर को दो टुकड़ों में फाड़कर एक ओर रख दिया। मेरी नज़रें मेज़ पर झुक गईं! मैं सोचता रहा, मुझे कुछ कहना चाहिए, लेकिन कुछ सूझा नहीं।

'तुमने शायद कभी किसी से मुहब्बत या नफ़रत नहीं की ?'

"नहीं,' मैंने सच बोला था।

वह मेरी ओर देखती रही, जैसे मैंने अपना वाक्य अधूरा छोड़ दिया हो। मेरे होंठ ज़ख्मी परिन्दों की तरह फड़फड़ा रहे थे। मैंने अपना एक हाथ होंठों पर रख दिया।

'जानते हो, तुम्हारे साथ कोई भी बात कर पाना कितना मुश्किल है ?' उसने मानो मेरी नब्ज़ को पकड़ लिया हो। उसके लहजे में किसी प्रकार का कोई आरोप नहीं था।

'जानता हूँ,' मैंने एक सच और बोल दिया था।

कुछ देर सर को एक तरफ़ झुकाए वह मेरी ओर देखती रही, मानो कुछ और आगे बढ़ने से पहले मुझे सावधान कर रही हो। मुझे यह सोचकर यह मलिन-सा सन्तोष होता रहा कि मेरी इजाज़त के बग़ैर और आगे नहीं बढ़ेगी। उस समय दो परस्पर विपरीत इच्छाएँ मुझे अपनी गिरफ़्त में जकड़े हुए थीं। एक ओर अपने-आपको बात का विषय बनते देखकर मुझे एक अजीब-सा कौतूहल हो रहा था, जैसे उसके प्रश्नों की धार आजमाने, उसके साथ मिलकर कोई खेल खेलने का अवसर मिल रहा हो। अपने-आपको नंगा होते देखने की पुरानी बचकाना कमज़ोरी। और साथ ही एकदम वहाँ से उठकर भाग जाने की ख्वाहिश भी उतनी ही तेज़ थी।

मैंने मानो कोई निश्चय करने से पहले एक बार फिर उसकी ओर देखा। वह मुस्करा रही थी, जैसे मेरी उलझन को पहचानकर उसने कुछ कहने और न कहने के बीच की स्थिति को अपना लिया हो। मुझे उसकी मुस्कराहट बहुत असाध्य प्रतीत हुई। मैंने व्हिस्की का एक लम्बा घूंट पीकर उससे दूर भाग जाने की कोशिश की। मेरी आँखें बन्द हो गईं। मस्तिष्क में लुटी-पिटी यादों की सड़ाँद फिर से बस उठी। ज़िन्दगी-भर मैं इन लाशों

को अपने कन्धों पर ढोता रहूँगा। ज़िन्दगी-भर सामने मुजरिमों की एक क़तार सर उठाए खड़ी रहेगी और मैं कभी इस और कभी उसको अपनी उँगली का निशाना बनाता रहूँगा। कोई नया अनुभव मेरे साए में पनप नहीं सकेगा। सोचते-सोचते सहसा अपनी स्थिति मुझे बहुत दयनीय प्रतीत होने लगी। पिघलकर पानी हो जाने की कैफ़ियत के साथ-ही-साथ यह विचार एक हथौड़े की तरह दिमाग़ में बजता रहा कि बहुत पी लेने के बाद सभी लोग कमोबेश इसी तरह टूटने-पिघलने लगते होंगे, दयनीय हो जाते होंगे। मैं 'सभी लोगों' की भीड़ में गुम नहीं हो जाना चाहता था। मैंने जबड़ों को बड़ी सख़्ती में बाँधकर अपनी बेबसी को एक मज़ाक़ से ढाँप लेने के अभिशाप से कहा . 'हलो !'

लेकिन मेरी आवाज़ उस तक नहीं पहुँची थी। उसका जिस्म दूर कहीं झिलमिला रहा था। पेट के बल रेंग-घिसटकर उसके पास जा पहुँचने, उसे सिर्फ़ एक बार छू लेने की ख़्वाहिश मन में तड़प उठी। फिर आँखें बन्द करके मैंने अपने-आपको बीच के व्यवधान से छिलते हुए देखा। देखा कि जब मैं उसके पास पहुँचकर अपना हाथ आगे बढ़ाऊँगा, तो वह पानी में पड़े हुए किसी अक्स की तरह कुछ देर काँपकर टूटती हुई-सी फिर जुड़कर एक हो जाएगी, और मैं अपने गीले हाथ को देखता रह जाऊँगा। फिर चुपचाप अपने उस भँवर में अकेले पड़े रहने की विवशता को स्वीकार कर लेने की ख़्वाहिश धीरे-धीरे मुझे अपने भूखे शिकंजे में दबोचती चली गई।

वह एकटक मेरी ओर देख रही थी मानो उसने पहले किसी पुरुष को इस तरह दम तोड़ते न देखा हो। लेकिन दम तोड़ने से पहले मैं वहीं से चिल्लाकर उसे कुछ कह देना चाहता था। महसूस हो रहा था, जैसे मेरे द्वारा कोई भयंकर रहस्योद्घाटन हो सकता हो। जैसे एक हौलनाक उत्तर-दायित्व मेरे ऊपर आ पड़ा हो, और अगर मैंने उसी क्षण उसे न निभाया, तो ज़िन्दगी-भर एक लाश का बोझ और मेरे ऊपर पड़ा रहेगा।

न जाने मैं उससे क्या कहना चाहता था, लेकिन डूबता हुआ आदमी चिल्लाए भी तो कैसे ?

● ●

शैडोज़

उसे महसूस हुआ जैसे वे एक साथ उसकी ओर बढ़ भी रहे हों और उससे दूर भी हटते चले जा रहे हों। पहले कभी ऐसा अजीब और असम्भव-सा भ्रम नहीं हुआ था। बहुत दिनों बाद दिखाई दिए हैं, उसने सोचा और उसके होंठ एक करारी-सी मुस्कराहट से चुरमुरा उठे, जैसे उसके मौन में सहसा एक दरार-सी पड़ गई हो। उस बर्फ़ीले अँधेरे में अपना मुस्करा पड़ना उसे बहुत निस्संग अनुभव हुआ—निस्संग और अस्वाभाविक ! उसकी चाल धीमी पड़ गई।

इधर कई दिनों से अपने-आपको समझने-संभालने की कोशिश में उसने सब कुछ फिर एकदम उलझाकर रख दिया था—एक बदनुमा-सा ढेर जिसमें से इसी प्रकार की पुरानी अपाहिज कोशिशों की बदबू आती थी। वह इस बदबू के आकर्षण में बँधा हुआ, घंटों कमरे में छटपटाते रहने के बाद एकाएक बदहवास होकर बाहर निकल आया था। बाहर बर्फ़ गिर रही थी।

सामान को इधर-उधर घसीट कर उसने पिचके हुए दायरे के आकार का एक रास्ता-सा बना लिया था। गलीचा कदमों की लगातार रगड़ से

घिस चुका था, जैसे बीच में पड़े उस बदनुमा ढेर के इर्द-गिर्द रौंदी हुई घास का एक घेरा-सा बिछा दिया गया हो। कई बार वह ढेर सहसा फूलने लगता, रौंदी हुई घास का-सा वह घेरा साँप बन लहराने लगता, दीवारें सरककर पास आ जातीं, और वह घबराकर गिर-बैठ-सा जाता। थोड़ी देर बाद आँख खुलती तो फिर वही बदनुमा ढेर, वही कैदखाना, वही अंधा रास्ता, वही चक्कर···

कभी-कभी वह आईने के सामने जा खड़ा होता। गालों की स्याह पिचकनों में निगाहें धँस जातीं। दाँतों को महसूस करने के लिए उन पर दबाव डालता तो कनपटियों तक की नब्ज़ें बज उठतीं। हाथों की उभरी हुई नाड़ियाँ ऐसी लगतीं जैसे रस्सियाँ बँधी हुई हों। सर पर सूखे खुरदरे बालों का छत्ता और पेशानी पर मोटी त्यौरियों के त्रिशूल! उबली हुई रिक्त आँखें—दो सूराख जिनके उस पार फैला हुआ बेपनाह रेगिस्तान···

वह उस रेगिस्तान में भटकने का आदी हो चुका था।

कभी-कभी उसे वहाँ एक छोटा उदास बच्चा दिखाई दे जाता। चारों तरफ से उमड़ रहे उस वीरान रेतीले फैलाव में दुबका बैठा वह बच्चा—एक छोटी-सी कमज़ोर ज़िद! रेत में दबे पैरों पर हल्की-हल्की सुस्त-सी थाप देता हुआ कई बार वह बच्चा घुटनों पर पेशानी टिकाकर सो जाता। रेत का उड़ता हुआ भँवर आता और उसे डुबो ले जाता।

कभी-कभी उस बच्चे के स्थान पर उसे एक सूखी हुई झाड़ी दिखाई दे जाती। वह उस झाड़ी में से उस बच्चे की तस्वीर उभारने की कोशिश करता। झाड़ी धीरे-धीरे एक झुके हुए बूढ़े में तबदील होने लगती। वह इस तबदीली को बड़े ग़ौर से, सहमी हुई निगाहों से देखता। फिर उस बूढ़े के इर्द-गिर्द रेत के अनगिनत छोटे-छोटे बुलबुले उभरने लगते। बूढ़ा उन बुलबुलों से बेखबर घुटनों में सिर डाले पड़ा रहता। फिर रेत का उड़ता हुआ भँवर उछलकर बूढ़े को निगल जाता।

एक बार उसने अपने उस रेगिस्तान में उस छोटे उदास बच्चे और उस सूखे उदास बूढ़े को एक साथ देखा था। उसे महसूस हुआ था जैसे उसने

किसी एक ही बात के दो रुख या किनारे देख लिए हों लेकिन वह बात फि भी पूरी तरह समझ में न आ पाई हो। वे एक-दूसरे से काफ़ी फ़ासले प खड़े थे। फिर वह फ़ासला धीरे-धीरे सिमटता चला गया था। बूढ़ा अपन जगह पर खड़ा रहा था, बच्चे की ओर पीठ किए हुए, उसे एक अधिकार युक्त अँगुली-सी दिखाता हुआ। बच्चा उसकी ओर बढ़ने लगा था—अ मना-सा, बँधा-बँधाया-सा, उदास! बूढ़े तक पहुँचते-पहुँचते वह बच्चा मानो बूढ़ा होता चला गया हो। समय का वह मरियल-सा सरकाव उ बहुत असह्य अनुभव हुआ था। फिर वे दोनों कुछ दूर साथ-साथ चले थे- बूढ़ा एक क़दम भर आगे! उनकी चाल बहुत भयानक थी, जैसे वे लक के बने हुए दो खिलौने हों और उसे कोई रहस्यपूर्ण खेल दिखा रहे हों। पि एकाएक रेत का उड़ता हुआ भँवर उन्हें खा गया था।

उस खेल का रहस्य अभी तक नहीं खुला, उसने सोचा।

उस नज़ारे के बाद उसने कई बार चाहा था कि वह छोटा उदास ब और वह सूखा उदास बूढ़ा एक बार फिर उसे उसी रेगिस्तान में एक स दिखाई दे जाएँ। वह बार-बार उस रेगिस्तान की रचना करता, व आसानी से कर लेता। फिर उस बूढ़े और बच्चे को एक-दूसरे के रूबरू खड़ा करने की कोशिश करता, लेकिन रेत उसकी पुतलियों में किरक उठ और वह बदहवास होकर आईने का सामना छोड़ देता।

उस शाम जब वह बाहर निकला तो रेत से उसकी आँखें सुलग थीं। बाहर बर्फ़ के नर्म खामोश फाहे गिर रहे थे। वह धीमे-धीमे, स के किनारे पड़े बेजान फ़ौलादी मेंढकों की ओट में बिछे हुए ठिठुरे अँधेरे चलने लगा। कुछ रोज़ पहले की एक शाम को इसी तरह वहाँ चलते-च वह सूखे पत्तों की चुरमुराहट बरदाश्त नहीं कर पाया था। उसे महसूस हु था जैसे बड़े-बड़े चींटे उसके पैरों तले पिसते चले जा रहे हों। अचला सुनकर कहा था, 'तुम दिन-दिन और मॉर्बिड होते चले जा रहे हो, क्यों

अचला के बारे में नहीं सोचूँगा, उसने फ़ैसला किया और एक मुस्क हट ने उसी वक़्त उस फ़ैसले को डस लिया।

सड़क वीरान थी। आवाज़ें अपरिचित दरवाज़ों के पीछे बंद थी। खिड़कियों पर पर्दे पड़े हुए थे। पेड़ों के नंगे पिंजर ख़ामोश खड़े थे। सर्दियों की पहली बर्फ़, उसने सोचा। अचला और चीनू इस समय खाना लगा रहे होंगे। अचला धीरे-धीरे भारी क़दमों से मेज़ की ओर आ रही होगी। उसका चेहरा बोझ से कुछ खिंचा हुआ होगा। अचला ने बर्फ़ के बारे में कुछ कहा होगा। कोई प्यारी और असाधारण-सी बात जिस पर चीनू मुस्करा दिया होगा। एक बार अचला ने चीनू के मुस्कराने की तुलना कली के ख़ामोश चटख़ उठने से की थी। अचला ने कोई नर्म लिबास पहन रखा होगा। चीनू को हिन्दुस्तानी लिबास, ख़ास तौर पर रेशमी ग़रारा बहुत पसन्द है, उसने सोचा। अचला के बहुत से लिबास हल्के आसमानी रंग के हैं, उसने सोचा। ग़रारे-क़मीज़ में उसके जिस्म के छोटे-छोटे ज़ाविये और उभार एकदम गुम हो जाते हैं, उसने याद किया।

अचला के बारे में नहीं सोचूँगा, उसने फिर फ़ैसला किया।

'ओल्ड पीपल्ज़ होम' के गेट पर वे दोनों पहरेदार गैस रोशन थे। दिन को वहाँ कुछ बूढ़े दीवार का सहारा लिए ख़ामोश और कटे हुए से खड़े रहते थे। उन लावारिस बूढ़ों का अकेलापन—उसे महसूस होता जैसे वे वहाँ खड़े निगाहों की भीख माँग रहे हों। एक बार एक बूढ़े ने उससे मौसम के बारे में कुछ कहा था। उसकी ख़्वाहिश हुई थी कि रुककर कुछ देर उससे कोई बात करे, लेकिन इस ख़्वाहिश के साथ ही उसे उस बूढ़े की जगह पर एक सूखी झाड़ी मँडराती हुई दिखाई दे गई थी।

पहली बार उसी सड़क पर वे दोनों उसे दिखाई दिए थे। उन्हें देखते ही वह चौंक उठा था। वे बहुत ही अजीब अटपटी चाल में एक झोंके की तरह उसके पास से गुज़र गए थे। उसने मुड़कर उन्हें देखने की ख़्वाहिश को दबा दिया था। अचला ने सुनकर कहा था, 'क्यों ?'

उन दोनों के बारे में नहीं सोचूँगा, उसने फ़ैसला किया।

'ओल्ड पीपल्ज़ होम' के गेट से 'फ़्यूनरल होम' की जगमगाती हुई इमारत दिखाई दे रही थी। शुरू-शुरू में उसे उन दोनों इमारतों का एक-

दूसरे से इतने क़रीब होना एक भद्दा मज़ाक-सा लगता था। अब अभ्यस्त हो गया हूँ, उसने सोचा। 'फ़्यूनरल होम' के छोटे-से लॉन में सफेद फूलों की झाड़ियाँ, जैसे अँधेरे में बर्फ़ के दो ख़ुशबूदार अंबार पड़े हुए हों। रात को इन फूलों से बहुत ख़ुशबू आती है, उसने सोचा। दिन को गेट पर खड़ा वह स्याहपोश बूढ़ा जो हर आने-जाने वाले को एक ख़ामोश और स्वागती होशियारी से देखा करता है जैसे कोई निमन्त्रण दे रहा हो। एक बार उसने अचला से इसका ज़िक्र करना चाहा था। एक बार उसने उस बूढ़े से उस सफ़ेद फूल का नाम पूछना चाहा था। अचला को क़रीब-क़रीब हर फूल की पहचान है, नाम याद हैं; ख़ुशबू से नाम बता सकती है। एक बार रात को बहुत देर से लौटने पर उस 'फ़्यूनरल होम' का चौपाट खुला दरवाज़ा देखकर वह बहुत डर गया था। एक बार उसने एक शराबी को उस दरवाज़े की दहलीज़ पर खड़े पेशाब करते देखा था, या शायद वह वही स्याहपोश बूढ़ा था। ग़ौर से देखना चाहिए था, उसने पश्चात्ताप का अनुभव किया और धीरे से मुस्करा दिया। एक बार अचला ने कहा था, 'मुझे तुम्हारी मुस्कराहटों में ज़हर की मिलावट दिखाई देती है, क्यों ?'

अचला के बारे में मत सोचो, उसने अपने-आपको हुक्म दिया।

अब वह यहूदी कम्यूनिटी हॉल के पास से गुज़र रहा था। दरवाज़े तक पहुँचने के लिए पाँच सीढ़ियाँ थीं। एक रात वह बहुत देर तक पाँचवीं सीढ़ी पर बैठा सिगरेट फूँकता रहा था। उससे पहले काफ़ी देर एक मामूली-से बार में बैठा रहा था। उस बार का माहौल कैसा था, उसने याद करने की कोशिश की। कुछ अधेड़ आदमी, दो अधेड़ औरतें, ख़ामोशी, एक धुँधला-सा टी वी सेट, अजनबियत, मेजों पर सर झुकाए बैठे लोग। नेबरहुड बार! सब लोग एक-दूसरे को जानते थे। रोज के गाहक! बारमैन सबके टेस्ट से वाक़िफ़ था। उसके पास वाले स्टूल पर बैठे हुए आदमी ने अचानक उसकी ओर रुख करके कहा था, 'हलो. आर्थर मिलर, हाऊ आर यू टुडे ?' फिर वे दोनों हँस पड़े थे। उस आदमी ने बहुत देर तक आर्थर मिलर के ड्रामों की तारीफ़ में बार-बार यही कहा था, 'देयर' ज़ ए फ़्लावर ऑफ़ थॉट इन

द गाईज़ राइटिंग।' उसने एक बार भी मारलिन मनरो का नाम नहीं लिया था। फिर उस आदमी ने अपनी जेब से एक मुड़ा हुआ कागज़ निकालकर उस पर अपना नाम लिखा था, अपने घर का पता लिखा था, कुछ लकीरें खींच कर नक़्शा-सा बनाया था और कागज़ उसके हाथ में देते हुए कहा था, 'कल मेरी शादी है। वहाँ तुम्हें प्रोटेस्टेंट फ़्लेवर मिलेगा, ज़रूर आना, मिस्टर मिलर!' और फिर वह एक झटके-से उठकर बाहर चला गया था। वह कागज़ अब भी मेरी किसी जेब में पड़ा हुआ होगा, उसने सोचा। उस आदमी के चले जाने के बाद बहुत देर तक बैठा पीता रहा था और आर्थर मिलर के बारे में सोचता रहा था। उस आदमी का नाम अजीब था, उसने याद किया। बारमैन ने उससे कहा था, 'दिस इज़ द लास्ट कॉल!' तब बार के दरवाज़े में उसे वे दोनों दिखाई दिए थे। शायद उसी समय अन्दर दाख़िल हो रहे थे। उसने जल्दी से अपना रुख़ दूसरी ओर मोड़ लिया था। थोड़ी देर बाद वह उठकर तेज़-तेज़ कदमों से बाहर निकल गया था। अगर थोड़ी और पी होती तो शायद उस रात मैं उनसे कोई बात कर पाता, या बारमैन से उनके बारे में पूछने की हिम्मत जुटा पाता। अगर कुछ कम पी होती तो शायद उनके चेहरे का भाव ठीक तरह से देख पाता। बार में उन्हें उस रोज़ पहली बार देखा था, उसने याद किया। लेकिन उस समय तक उन्हें कई बार, कई जगहों पर देख चुका था और अचला से कई बार उनके बारे में बातें कर चुका था। अचला की निगाहों में अविश्वास और शुबहे की आमेज़िश उस समय तक बहुत साफ़ हो गई थी। उसकी आँखों ने कहना शुरू कर दिया था—तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो रहा है, क्यों?

उन दोनों के बारे में मत सोचो, उसने अपने-आपको सुझाया।

एक बार वह अचला के संग यहूदी लोक-नाच देखने उस कम्यूनिटी हॉल में गया था। अचला ने यहूदियों के पहचान की कई निशानियाँ उसे बताई थीं और वह सुनते-सुनते ऊब गया था। उन दिनों वह किसी बेकार बात को लेकर लगातार बोलती चली जाती जैसे अपनी बातों और आवाज़ के बहाव में किसी और बात या आवाज़ को बहा ले जाना चाहती हो। थोड़े

ही दिनों में उसकी शादी किसी यहूदी से होने वाली थी। अचला उसे 'चीनू कहकर बुलाती थी। नाच खत्म होने पर जब वे वाहर सीढ़ियों पर खड़े तो चीनू की कार के हॉर्न की आवाज़ पहचानकर अचला ने कहा था, 'अरे यह कम्बख्त कहाँ से आ गया !' फिर वे तीनों दरिया के किनारे जा बै थे। चीनू ने उस रोज़ पहली वार अचला को उसके सामने चूमा था अचला ने वनावटी झेंप और गुस्से से कहा था, 'हिन्दुस्तान में यह वदतमीज़ नहीं चलेगी।' चीनू ने उसकी ओर देखकर कहा था, 'डू यू माइंड, मा फ्रेंड !' जैसे वही हिन्दुस्तान हो। वह जवाव में ज़ोर से हँस दिया था औ अचला चीनू से कुछ दूर हटकर वैठ गई थी। उसे चीनू का 'माई फ्रेंड वहुत कोरा, वहुत वेगाना लगा था। शायद अचला ने भी महसूस किया हो उसने सोचा। फिर वह पानी की ओर देखती हुई उछल पड़ी थी। 'चल पूछते हैं, शायद किश्ती मिल जाए, वहुत मज़ा रहेगा।' और वे दोनों अचल के पीछे-पीछे खामोश, सर झुकाए, चलने लगे थे। चीनू ने धीरे से कहा था 'नाच कैसा था ?' उसने धीरे-से जवाव दिया था, 'खासा था !' उस रो उसने फिर कभी अचला से न मिलने का एक खामोश और पहला फ़ैसल किया था। लेकिन…उस फ़ैसले के वारे में नहीं सोचूंगा, वह धीमे से बड़ वड़ाया।

अचला ने उसे नाच सिखाने की वहुत कोशिश की थी, जहाज़ में भ और वहाँ पहुँचकर भी। 'तुम म्यूज़िक के साथ क्यों नहीं चलते, इस तरह त हुए क्यों रहते हो ? जिस्म को ढीला छोड़ो, मुस्कराओ, मेरी ओर देखो… वावा, मैं तुम्हें कभी कुछ भी नहीं सिखा सकूँगी।' 'यह हैं, मेरे न नाच सक वाले दोस्त !' अचला किसी का साथ मंजूर कर लेती और वह किनारे खड़ उसे देखता रहता। फिर उसने अचला के साथ जाने से इन्कार करना शु कर दिया था। उसे वहुत गुस्सा आता। कहती, 'अरे वावा, यहाँ अके वैठे क्या करोगे, चलो न ! अच्छा नहीं तो वस मेरी खातिर ही चलो अकेली जाऊँगी तो लोग क्या कहेंगे और मुझे यहाँ की डेटवाज़ी से नफ़र है, चलो भी !' वह उसके अनुरोध से नर्म पड़ जाता। सोचता जव उसक

अनुरोध नही रहेगा तो क्या होगा ? और फिर धीरे-धीरे अचला ने ज़िद करना कम कर दिया। लेकिन उन दिनों की बेचैनी के बारे मे नही सोचूँगा।

अचला ने चीनू की कभी कोई तारीफ़ नही की थी। सिर्फ़ कभी-कभी यही कहती, 'यहाँ के लड़कों से बहुत अलग है, तुमसे काफ़ी बातों मे मिलता है और मुझे पसन्द है।' सुनकर वह हँस देता। अचला चुप हो जाती। ऐसे क्षणों मे उसकी ख़ामोशी उसे बहुत बुरी लगती और अपनी हँसी भी।

अचला शुरू से ही उसकी हँसी मे घुले ज़हर की शिकायत करती आई थी। कॉलिज के दिनो मे ही। उन दिनो वह चंचल हुआ करती थी। वह तो अब भी है, उसने सोचा। लेकिन अब बात दूसरी है उसने फ़ैसला किया। उन दिनो उसका अधकचरा जीवन देखकर उसे चबा डालने की ख़्वाहिश होती थी। उसे देखते ही जिस्म टूटने-सा लगता था। वह तो अब भी टूटता है, उसने सोचा। कल्पना करना मुश्किल होता था कि वह जानवर-सी लड़की कभी कुछ सोच-समझ भी सकेगी। हमेशा उसे तंग करने, सताने, बनाने की ख़्वाहिश होती थी। जी चाहता था कि पकड़कर उसे हवा मे उछाल दो, उसके बाल खींच लो या फिर उसकी बाँहों मे चुटकी भरकर भाग जाओ। लेकिन मैंने कभी ऐसा किया नही, उसे अफ़सोस हुआ। वह ख़ुद उन दिनो भी इसी तरह बुझा-बुझा रहता था। एक बार उसने अचला से पूछा था, 'उन दिनों तुम मेरे बारे मे क्या सोचा करती थी ?' उसने जवाब दिया था, 'कुछ भी नही तो, क्यों ? किन दिनो की बात कर रहे हो ?' उसने जवाब दिया था, 'कुछ नही, यूँ ही बहक गया था।' अचला उसकी तरफ़ ग़ौर से देखती हुई मुस्कराने लगी थी। वह किसी रंग मे भी क्यों न मुस्कराए, मेरा जिस्म झनझना उठता है, क्यों ? उसकी मुस्कराहटों के बारे में नही सोचूँगा, उसने फ़ैसला किया।

एक रात जहाज़ में भी उसने अचला से उन दिनो का ज़िक्र छेड़ा था। वह बड़े ग़ौर से सुनती रही थी, उसने याद किया। उसने अचला को बताया था, 'तुम्हें देखकर शुरू-शुरू मे मुझे बहुत हँसी आती थी। अचला ने जवाब दिया था, 'मुझे तुम्हारी हँसी से नफ़रत हुआ करती थी। बड़ी ज़हरीली

हँसी थी। वह तो शायद अव भी है। लेकिन अव मैं तुम्हें जान चुक कुछ-कुछ समझ चुकी हूँ।' उसकी ख्वाहिश हुई थी कि वहीं रोककर ले—वताओ तो मैं कैसा हूँ ? लेकिन ऐसे वेहूदा और बचकाने सवाल ज़बान तक नहीं आ पाते, अन्दर-ही-अन्दर सुलगते रहते हैं, क्यों ? मैं कूफ़ हूँ, उसने धीरे से कहा।

अचला उस रात पहले तो वहुत देर तक अपने वारे में कॉलेज के ज की उसकी धारणाओं को खामोशी से सुनती रही थी, सुनकर खुश उत्तेजित भी होती थी, जैसा कि कभी-कभी किसी बुज़ुर्ग से अपने छु की छोटी-छोटी हरकतों और शरारतों का हाल सुनकर हम होते हैं। अचानक बोल उठी थी, 'चलो, नीचे चलें, देखो तो अँधेरा कितना वढ़ है, पानी तक दिखाई नहीं देता। मुझे तो डर लगने लगा है वावा, और न जाने क्यों ये सब पुराने क़िस्से ले वैठ हो, जैसे कोई बूढ़ी दादी हो। च मैं तुम्हें नाच सिखाऊँगी। इस तरह अँधेरे में तुम्हारी आँखें चमकती है मैं डर जाती हूँ। देखो तो मेरे रोयें खड़े हो गए हैं।' और उसने अपनी आगे वढ़ा दी थी। उसने एक वहुत ही हल्के स्पर्श से उसके जिस्म नरमी और हरारत को महसूस किया था और उसकी उँगलियों में विज दौड़ गई थी। अचला ने धीरे से अपनी वाँह को वापस हटा लिया थ कुछ क्षण वे खामोश वैठे रहे थे। वह समुन्दर की भर्राई हुई आव समोता-सुनता रहा था। फिर अचला ने उठते हुए एक अजीव गम्भीरता कहा था, 'और फिर पीछे मुड़-मुड़कर देखते रहने से कोई फ़ायदा नह निकम्मी वात !'

अगर उस रात अचला ने वात को इस तरह अचानक काट न दि होता तो मैं और भी कई निकम्मी वातें करता, उसने सोचा। उस रात क सा एकान्त सन्नाटा और अँधेरा सारे सफ़र में फिर कभी शायद ही मि पाया हो, उसने सोचा। वह अचला से अपने वारे में वहुत-सी वातें करन चाहता था। कॉलेज में वहुत से लोग उसके माँ-वाप के अलग रहने के वा में जानते थे। शायद अचला को भी मालूम था। उस रात वह उससे पूछन

हता था। अगर उस रात अचला ने बात को इस तरह अचानक'''उस त के बारे में नहीं सोचूँगा, उसने फ़ैसला किया।

हार्वर्ड स्क्वायर में अब भी चहल-पहल के कुछ थके-थके आसार दिखाई रहे थे। लोग लाइब्रेरी से वापस लौट रहे थे। गैस स्टेशन में रोशनी की ग-सी लगी हुई थी। क्लब फोर्टी टू में इस समय बला की भीड़ होगी। म्बे-लम्बे बालों वाली लड़कियाँ और गन्दे-गन्दे कपड़ों वाले लड़के! कॉफी दौर चल रहे होंगे। जाज़ का शोर होगा। सब लोग धुएँ के बादलों में लपटे हुए होंगे। एक शाम वह अचला के संग वहाँ गया था। अचला उसे डर्न जाज़ की बारीकियाँ समझाती रही थी। वह हमेशा मुझे कुछ-न-कुछ मझाती रहती है, उसने याद किया। कैफ़ेटेरिया के काउंटर पर इस समय ह कड़वी बुढ़िया नहीं होगी। एक कोने में वह लम्बे बालों वाली उदास ड़की अकेली बैठी सिगरेट पी रही होगी। उसकी आँखों में अचला की ाँखों की-सी गहराई है। उसने रोज़ की तरह अस्त-व्यस्त लिबास पहन खा होगा। और उसके बालों की एक लट मेज़ पर लटक रही होगी। कुछ हिन्दुस्तानी इधर-उधर मेज़ों पर बिखरे बैठे एक-दूसरे की नज़रें बचाकर उस लड़की की टाँगों की ओर देख रहे होंगे। एक बार उसने उस लड़की का ज़िक्र अचला से किया था। अचला ने कहा था, 'अगर मैं तुम्हारी जगह होती तो ज़रूर उस लड़की से बात करने का कोई तरीक़ा ढूँढ ही निकालती, लेकिन तुम ठहरे ख़ालिस हिन्दुस्तानी, क्यों?' कभी-कभी अचला का मज़ाक काफ़ी हल्के स्तर का हो जाता है, उसने सोचा।

कैफ़ेटेरिया के पास पहुँचकर वह रुक गया। अन्दर नहीं जाऊँगा। अन्दर शायद वे दोनों फिर दिखाई दे जाएँ। इस कैफ़ेटेरिया से उन्हें ख़ास प्यार है। यार्ड की ओर मुड़ गया। उनके ख़याल मात्र से ही मेरे रोंगटे क्यों खड़े हो जाते हैं, वह झुँझलाया। और लोगों को भी तो वे आख़िर दिखाई देते होंगे? लेकिन अचला ने कहा था कि उसे वे कभी दिखाई नहीं दिए, हालाँकि कुछ महीने पहले तक वह भी तो वहीं, उसी इलाक़े में घूमा करती थी। इसीलिए तो सुनकर वह इतनी हैरान हुई थी कि उसकी आँखों में

अविश्वास की झलक भी दिखाई देने लगी थी। और किसी से उसने कभी इस विषय में पूछा नहीं था। अचला से वात करने के वाद वह वाकई ए अजीव और भयानक शक में पड़ गया था। क्या वे केवल मुझे ही दिखा देते हैं ? वह शक अभी तक दूर नहीं हुआ, उसने सोचा।

वैसे अचला से उनके बारे में उस रोज़ वातें करने के वाद उसे महसू होने लगा था कि ज़रूर उसके वात करने के अन्दाज़ में और उसके चेहरे हाव-भाव में कोई ऐसी वात रही होगी जिसे देखकर अचला इस क़द हैरान हो उठी थी और साथ ही इतना सहम भी गई थी। उसके वाद अचला से वातें करने की हिम्मत नहीं हुई थी। जव कभी वे अचान उसे दिखाई दे जाते, वह हड़बड़ाकर अपना रास्ता वदल लेता। किसी किसी रोज़ वे तीन-चार वार दिखाई दे जाते तो रात-भर उसकी नींद अजीव-अजीब सपनों से नुचती रहती। उन सपनों को याद नहीं करूँगा उसने फ़ैसला किया।

यार्ड में विछी वर्फ़ की वारीक-सी चादर उसे वहुत भली लगी। लाइ ब्रेरी की सीढ़ियों पर वैठकर वह कुछ देर चैपल की ओर देखता रहा। अँधेरे में छुपे हुए स्टीपल की नोक पर टिका क्रॉस उसे वड़ी मुश्किल से दिखाई दिया।

एक सपने में यह क्रॉस न जाने कैसे आ घुसा था। वह उस सपने को उभारने की कोशिश में कुछ देर के लिए भूल गया कि वह सीढ़ियों पर अकेला वैठा है, लाइब्रेरी को वन्द हुए काफ़ी देर हो गई है और वर्फ़ के फाहे पहले से ज्यादा तेज और भारी हो गए हैं। वह सपना वहुत अजीव था, उसने धीरे से कहा। न जाने उसने उस सपने में उन दोनों से क्या-क्या वातें की थीं ? वे खामोश सुनते रहे थे और उनकी शक्लें वदलती रही थीं। उसे अनुभव होता रहा था जैसे वे तमाम चेहरे जो कभी भी उसके सम्पर्क में आए थे, वहुत तेज़ी से उन दो चेहरों में से उसकी ओर झाँकते चले जा रहे थे। वह मानो उन दोनों की नज़रें वचाकर उन पोशीदा हैं चेहरों को देखता चला जा रहा था और उन दोनों को अपनी वातों में उल

ाए रखने के लिए लगातार बोलता चला जा रहा था। सपने में भी उसे हसूस होता रहा था जैसे वह न सिर्फ उन्हे धोखा दे रहा हो बल्कि अपने-पको भी। साथ ही उसे यह भी महसूस हो रहा था जैसे वह खामोश खड़े पने चेहरों के पीछे से उसे कोई अर्थपूर्ण झांकियां-सी दिखा रहे हों, वहो खाने के लिए उसके सामने आ खडे हुए हो। फिर यह सोचकर उसे झल्लाहट भी हुई थी कि वह यूं ही उन्हे छलने की कोशिश कर रहा है, क्यो ही उनसे साफ पूछ लेता कि वे कौन है और क्यो उसका पीछा कर रहे हूं। और फिर इस विचार के आते ही उसने देखा कि वे दोनो उडकर उस चैपल के स्टीपल की नोक पर टिके उस क्रॉस पर जा बैठे है और उसे सपने मे इस बात पर बहुत आश्चर्य हुआ था। उसके बाद सब कुछ इस कदर उलझ गया था कि उसे अपने कैदनुमा कमरे मे पड़े उस मनहूस ढेर की याद हो आई थी और साथ ही उस रेगिस्तान की और सपने मे उसकी ख्वाहिश होने लगी थी कि अब उसे कोई और सपना आना चाहिए।

उस सपने के बारे मे मत सोचो, उसने अपने आपको सुझाया।

बर्फ के फाहों ने बेकरारी को सोख लिया है, उसने सोचा। उसके किसी ऐसे ही वाक्य पर एक बार जहाज मे अचला ने कहा था, 'तुम्हारी बातों से मुझे डर लगता है, क्यो ? तुम्हारा इमैजिनेशन बहुत परवर्टेड है, क्यों ?' 'वह हँस दिया था। अचला ने कहा था, 'तुम्हारी हँसी मे पागलाना सुरूरी है, ज़हर है, क्यों ?' वह फिर हँस दिया था। अचला ने एक लम्बी सांस लेते हुए कहा था, 'तुम बहुत उलझे हुए हो, क्यो ?' उसे करीब-क़रीब हर वाक्य के अन्त मे टँका हुआ वह छोटा-सा 'क्यों' बहुत भाता था। जैसे वह उसे कोई सफाई पेश करने की दावत भी दे रही हो और साथ ही उसकी असमर्थता मे एक मीठा-सा काँटा भी चुभो रही हो। उसे वह चुभन बहुत पसन्द थी। उसके बगैर वह हर समय अपने-आपमे डूबा रहता। जैसा कि अब, उसने सोचा।

अचला के साथ रहने की शदीद ख्वाहिश के बावजूद भी वह कभी मुकम्मल तौर पर अपनी स्मृति के इर्द-गिर्द लिपटे हुए जालो से आज़ाद

नहीं हो पाता था, क्यों ? एक बात अचला से करता और एक अपने आप से। उससे कुछ कहता अपने आपसे कुछ। एक कल्पना उसके बारे में करता और एक अपने बारे में। एक नज़र उसकी ओर डालता और एक अपनी ओर। कई बार उसकी ओर देखते-देखते उसकी आँखों का रुख या तो उसके अपने व्यतीत की ओर मुड़ जाता या उससे बहुत दूर कहीं भविष्य में भटक जाता। अचला कहती, 'तुम हरदम इतने बिखरे-बिखरे रहते हो, क्यों ?' और वह अपना बिखराव समेटते हुए एक फीकी-सी हँसी हँस देता। मैंने कभी खुलकर उससे कोई बात नहीं की, उसने सोचा। क्यों ? उसे हँसी आ गई।

सफ़र के शुरू के दिनों में वह अपनी उस घरेलू क्राइसिस के बारे में बहुत सोचा करता था। कई बार उसका जी चाहता कि वह अचला से उस क्राइसिस के बारे में विस्तार से बातें करे। उसकी याद हमेशा भीतर कहीं रिसती रहती थी। वह कम से कम उस याद से तो छुटकारा पा लेना चाहता था। वह अचला को बताना चाहता था कि अपने माँ-बाप के अलगाव को लेकर किस किस्म के पेचीदा विचार और भाव उसके मन में पैदा हुए थे। अब वह अपेक्षाकृत उन भावों से मुक्त हो चुका था लेकिन ज़ेहन अभी पूरी तरह साफ़ नहीं हुआ था। और होगा भी नहीं, उसने अपने आपको चेतावनी दी···

शुरू-शुरू में उसके पिता कभी-कभार उससे मिलने उसके कालेज आ जाया करते थे। वह जब उसे देखकर गिलगिली-सी मुस्कराहट अपने चेहरे तक खींच लाते तो उसे उनका चेहरा बहुत बदसूरत जान पड़ता। उसे उन पर भी गुस्सा आता और अपने आप पर भी। उन दिनों वह फ़र्स्ट इयर में पढ़ता था और अचला को बहुत दूर से देखा करता था। एक बार ऐसी ही किसी मुलाक़ात के बाद उसने घर आकर माँ से कहा था 'आई हेट हिम !' माँ ने बात बदलने की कोशिश में उसकी बात को नज़र-अन्दाज़ करते हुए अपने स्कूल का कोई बेमानी-सा क़िस्सा तफ़सील से सुनाया था और फिर उसे अधूरा छोड़कर कह उठी थीं, 'तुम अभी नादान हो, अभी तुम्हें कोई

फ़ैसला नहीं करना चाहिए ।' उसे माँ की समझदारी पर बहुत गुस्सा आया था । उसने पैर पटक कर कहा था, 'मैं सिर्फ़ इतना चाहता हूँ कि वह मुझसे मिलने न आया करें । मुझे उनका मुस्कराकर बातें करना बेहद बुरा लगता है । *आई हेट हिम ! माँ ने शायद किसी तरह उन्हें मना कर दिया था,* उसके बाद वह अगर आते भी तो थोड़ी देर के लिए । मुस्कराते नहीं थे । कोई बात नहीं कर पाते थे । कहते, 'इधर किसी से मिलने आया था, तुम्हारा इम्तहान कब है…' धीरे-धीरे उनकी इस तरह दबी-दबी-सी ख़ामोशी पर उसे तरस आने लगा था । माँ कभी उनके बारे में कोई बात या उनके ख़िलाफ़ कोई शिकायत नहीं करती थी । एक बार उसने माँ से पूछना चाहा था, तुम भी दूसरी शादी करने की सोच रही हो क्या ? लेकिन ऐसे सवाल बहुत छोटे बच्चे कर सकते हैं या बहुत बड़े, उसने सोचा ।

माँ की उम्र उन दिनों कोई ख़ास ज़्यादा नहीं थी । साथ चलते वे बहन-भाई दिखाई देते होंगे, उसने सोचा । 'माँ' कहने में उसे कई बार बहुत संकोच भी होता था । माँ के सामने कपड़े बदलने में, तौलिया बाँधकर ग़ुसलख़ाने से निकलने में, सोने में उसे बहुत झिझक महसूस होती थी और साथ ही झिझक पर गुस्सा भी आता था । माँ कभी उसके कंधे पर हाथ रख देती या सड़क पार करते हुए उसका हाथ पकड़ लेती या रिक्शा वग़ैरा में उसके साथ सटकर बैठ जाती तो वह एकदम सिमट-सा जाता था । गरमियों में स्कूल से वापस लौटकर माँ कमरे में दाख़िल होते ही साड़ी उतार देती और दिन भर पेटीकोट में घर के अन्दर घूमती रहती । वह घर में रहता तो उसकी नज़रें हमेशा नीची रहती । रात को कभी वह पानी पीने के लिए उठता तो माँ का खिंचा हुआ पेटीकोट ब्लाउज़ देखकर उसे बहुत शर्म आती । एक दिन माँ ने अपनी पीठ पर निकली हुई फुन्सी उसे दिखा कर बाज़ार से मरहम ला देने के लिए कहा था और उसकी ख़्वाहिश हुई थी कि वह लड़के की बजाय लड़की होता या उसकी कोई बहन होती ।

पिता के साथ रहने पर भी माँ उनके पास बहुत कम बैठती थी । वह

छोटा-सा था जब उन दोनों ने उससे मेसेंजर का काम लेना शुरू कर दिया था। तब उसे वह एक दिलचस्प-सा खेल भर समझता था। कुछ बड़ा होने पर उसे अपना वह दुरुपयोग बहुत अजीब और बुरा लगने लगा था। लेकिन साथ ही वह हालात की मजबूरी को किसी हद तक समझने भी लगा था। समझता तो मैं बचपन में भी था, उसने सोचा। समझता नहीं था, सिर्फ़ महसूस करता था, उसने फ़ैसला किया। इस सारे झमेले के बारे में मेरी समझ अधूरी और उलझी हुई रहेगी, उसने फ़ैसला किया।

माँ ने पिता की दूसरी शादी के बारे में कभी कुछ नहीं कहा था, कभी अपनी आवाज़ गीली नहीं की थी। उसे माँ पर भी बहुत गुस्सा आता था। कभी-कभी वह पत्थर-सी प्रतीत होती थीं। उसने माँ की इस सख़्ती की तह तक पहुँचना चाहा था। लेकिन माँ चारों तरफ़ से ठोस थीं।

जब पिता जी उससे मिलने आते तो शुरू-शुरू में उसे खटका लगा रहता कि कहीं वे उससे अपनी सफ़ाई न देने लगें। शायद इसीलिए उसे उनकी वह मुस्कराहट नागवार लगती। वह सारी बातें माँ के मुँह से ही सुनना चाहता था। उसे यह डर भी रहता कि पिता जी चलते समय चुपके से उसके हाथ में कुछ पैसे थमा देने की कोशिश करेंगे। बाद में एम० ए० के दाखले के समय उन्होंने एक चेक भेजी थी। वह चेक मुझे लौटानी नहीं चाहिए थी, उसने सोचा।

फिर उसकी रवानगी के समय भी उनका एक रजिस्टर्ड पत्र आया था। उसने टटोल कर देखा था और लेने से इनकार कर दिया था। चलने से पहले वे एक दिन उससे मिलने आए थे। माँ उस समय घर में नहीं थीं। वह थोड़ी देर सड़क पर उनके संग खड़ा रहा था। उन्होंने उसकी यूनिवर्सिटी का नाम पूछा था और पूछा था: सफ़र में कितने दिन लग जाएँगे, वहाँ कितना अरसा रहोगे, तैयारी सब ठीक हो गई है, कोई और दोस्त साथ जा रहा है क्या···उसे महसूस हुआ था जैसे वह किसी पड़ोसी के प्रश्नों के उत्तर दे रहा हो। उन्होंने उस लौटाए हुए रजिस्टर्ड लिफ़ाफ़े का ज़िक्र नहीं किया था। सारी मुलाक़ात के दौरान उनका सर नीचा रहा

था। उसने मां से इस मुलाकात का जिक्र नहीं किया था।

उस रात भी उसने एक अजीब, उलझा हुआ-सा, बेमानी सपना देखा था जिसमें एक छोटा-सा जहाज था और कई लोग उस जहाज को पत्थर मार रहे थे और वे पत्थर चिड़ियों में तब्दील होते जा रहे थे। चिड़ियों का रंग नीला था और बाद में जहाज ऊपर उड़ने लगा था और समुन्दर ने उछलकर···उस सपने के बारे में नहीं सोचूँगा, उसने फैसला किया।

चलने से पहले एक बार अचला उसके घर कोई किताब लेने आई थी। वह कहीं बाहर गया हुआ था। मां ने उसे किताब दे दी थी। जब वह घर लौटा तो मां ने बताया था, 'अचला आई थी, एक किताब ले गई है, वह कह रही थी, उसके सब कागजात ठीक हो गए हैं, बहुत प्यारी लग रही थी, कौन है?' उसने चुपचाप सुन लिया था और कहा था, 'मेरी एक पुरानी क्लासफेलो है, वह भी वहीं जा रही है, उसी जहाज से।' मां ने और कोई सवाल नहीं पूछा था। पूछती तो वह कुछ बता भी न पाता। अचला के बारे में उस समय उसका जेहन बहुत उलझा हुआ था। मां ज्यादा पढ़ी-लिखी न होने पर भी बात खूब बिठाकर, संभल कर, बड़े संयत और आधुनिक ढंग से किया करती थी। कभी-कभी उसकी ख्वाहिश होती कि मां दस-बीस साल और बड़ी होतीं, उनके जिस्म और शक्ल से बुजुर्गी के आसार कुछ और होते, वह उनसे झेंपने की बजाय कुछ डरता, कतराने की बजाय कुछ और नजदीकी का अनुभव करता। बड़ी अजीब ख्वाहिश थी, उसने सोचा।

दूसरे रोज अचला मिली तो उसने बताया, 'कल तुम्हारी सिस्टर भी न होती तो मेरा जाना बेकार रहता।' सुनकर वह चौंक भी उठा था और उसे हँसी भी आई थी। वह अचला की गलती सुधारना चाहता था, लेकिन अचला अकारण ही उसकी हँसी पर नाराज हो गई थी। 'कई बार तुम ऐसे हँसते हो जैसे दूसरा आदमी बिल्कुल बेवकूफ हो,' उसने तुनककर कहा था। और फिर कभी मिलने का वादा करके इतराती हुई-सी अमेरिकन एक्सप्रेस के दफ्तर से बाहर निकल गई थी। उस समय अचला की अदा

और खूबसूरती पर उसकी तबीअत बहुत मचल उठी थी, लेकिन साथ ही उसके साथ अपना सारा सम्बन्ध उसे बहुत बचकाना-सा प्रतीत हो उठा था। टिकट काउण्टर पर खड़ा वह बहुत देर तक यह फ़ैसला करने की कोशिश करता रहा था कि इस बचकाने और अटपटे संबंध की ज़िम्मेदारी उस पर है या अचला पर। और फ़ैसला अभी तक नहीं हो पाया, उसने सोचा। अभी तक. उसने दुहराया।

यार्ड में अब हल्की-सी हवा चलने लगी थी, सर्द और काटती हुई सी हवा। उसके कान जल रहे थे। हाथ मलता हुआ वह उठ खड़ा हुआ। टैक्सी नहीं लूंगा, उसने फ़ैसला किया। छोटे-छोटे फ़ैसले मैं कितनी आसानी से कर लेता हूँ, उसने सोचा।

माँ उसे छोड़ने बम्बई तक आई थीं। अचला से दुबारा मिल कर बहुत खुश हुई थीं। बड़े बुज़ुर्गाना अंदाज़ में अचला से बोली थीं, 'इसका कुछ खयाल रखना, बड़ा बेखबर-सा है।' सुनकर अचला ने माँ की ओर यूं देखा था जैसे उसी दम उसे अपनी ग़लती का अहसास हो गया हो और वह समझ गई हो कि वह उसकी माँ से बातें कर रही है। अचला को छोड़ने कोई नहीं आया था। माँ ने धीरे से पूछा था, 'इस बेचारी को छोड़ने कोई नहीं आया?' जवाब में उसने कंधे सिकोड़ दिए थे और बाद में बहुत देर तक उस विषय में सोचता रहा था।

उस रोज़ अचानक माँ इतनी बड़ी-सी दिखाई देने लगी थीं। देर तक उसकी पीठ सहलाती रही थीं और जहाज़ की ओर देखती रही थीं। आँख उनकी तब भी नम नहीं हुई थी। उसे अपने भरे हुए गले पर गुस्सा आ रहा था। जहाज़ पर चढ़ने से पहले उसने धीरे से माँ के दोनों कंधों को छुआ था और फिर तेज़-तेज़ अचला के पीछे-पीछे जहाज़ की ओर चल दिया था। चलते समय कोई बात, कोई ताकीद आदि नहीं हुई थी। रेलिंग पर थोड़ा झुकी हुई, माँ की ओर एकटक देखती हुई, खामोश अचला उसे बहुत भोली लगी थी। जहाज़, संगीत की उदास लय के साथ-साथ साहिल से परे सरकता चला जा रहा था। लोग बड़ी नरमी से, धीरे-धीरे हाथ हिला रहे थे।

अचला की ओर देखते हुए उस समय उसे महसूस हुआ था जैसे वह अपनी समस्या अपने साथ लिए जा रहा हो। उसे देखकर न जाने क्यों ऐसा ख्याल आया था उस समय? उसने सवाल किया। अचला ने माँ की ओर संकेत करके कहा था, 'शी इज ब्यूटीफुल!' उसकी आँखें थरथरा रही थी।

उसने अचला से पूछा था, 'तुम्हारी माँ तुम्हें छोड़ने क्यों नहीं आई?' अचला ने जवाब दिया था, 'मेरी माँ नहीं है।' उसकी आवाज़ में कोई लरज़िश नहीं थी, कोई हसरत नहीं थी। उसे सहसा महसूस हुआ था कि अचला भी माँ की ही तरह कहीं कोई पत्थर पाले हुए है। उसने कहा था, 'वे जो मुझे छोड़ने आई थी, माँ थी।' अचला ने मुस्कराकर कहा था, 'मेरी गलती का सुधार तुमने बहुत देर बाद किया, वैसे मैं खुद ही समझ गई थी। बहुत सुन्दर हैं।'

वह माँ के बारे में उनकी सुन्दरता की बजाय और ज्यादा गम्भीर पहलुओं पर बातें करना चाहता था। वह अचला की सहायता से किसी उलझन को मिटाना चाहता था। वैसे उसके दिमाग़ में कोई साफ धारणा या कोई सीधी उलझन नहीं थी, फिर भी उस रोज़ उसे लग रहा था जैसे अचला के संग बातें करते-करते वह अपने आप खुलता चला जाएगा और हरदम जो भीतर एक स्याह बोझ-सा पड़ा रहता है उठ जाएगा। लेकिन सहसा अचला ने उसका सारा ध्यान अपनी ओर खींच लिया था। उसने किसी अजीब अन्दाज़ से देखा होगा या उसके चेहरे पर कोई अनजाना भाव झलक आया होगा। कुछ तो ज़रूर हुआ होगा कि उनकी दृष्टि माँ की याद से हट कर अचला पर केन्द्रित हो गई थी। अचला ने खामोशी तोड़ते हुए कहा था 'मेरे डैडी आते लेकिन वह मेरे बाहर चले आने पर खुश नहीं हैं। उन्हें यकीन है कि मैं उनके रहते वापस नहीं लौटूँगी। कोई ज्यादा उम्र भी नहीं है, वैसे ही उन्हें कोई वहम-सा हो गया है। कह रहे थे कि मैं उनसे भाग रही हूँ। बहुत उलझे हुए हैं, तुम्हारी तरह। मुझे उनसे, उनकी बातों से बहुत डर लगता है, जैसे तुमसे और तुम्हारी बातों से। लेकिन फिर भी बहुत फ़र्क है, वे डैडी हैं और तुम दोस्त! वैसे कभी-कभी मैं भूल जाती हूँ,

क्यों ?'

इस पर वह वहुत जोर से एक खुरदरी हँसी हँसा था। उसने साफ़ नहीं किया था कि वह क्या भूल जाती है। वह पूछना भी नहीं चाहता था। वैसे यह सुनकर कि अचला को उससे डर लगता है, उसे आश्चर्य कम हुआ था और अफ़सोस ज़्यादा। ज़रूर उसकी सूरत और बातों में बूढ़ों की सी कोई वात रहती होगी जिससे अचला को डर लगता है, उसने सोचा था। इस विचार से उसका चेहरा बुझ गया होगा। वह तो हमेशा ही बुझा रहता है, उसने सोचा। लेकिन कुछ क्षण पहले जव अचला ने वात शुरू की थी तो उसे एक अत्यन्त सुखद सामीप्य का अनुभव हुआ था। पहली वार अचला ने इस तरह ठहर-ठहर कर, एक गरम-सी आत्मीयता से छोटे-छोटे वाक्यों में वात की थी। सफ़र का दूसरा दिन था। जहाज़ अभी पूरी तरह गरम नहीं हुआ था। लोग जो अभी पीछे छोड़ आए थे, उसी के वारे में सोच रहे थे, उसी में डूवे हुए से दिखाई देते थे। कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने पहले दिन से ही उछल-कूद मचानी शुरू कर दी थी। उसे उन पर ग़ुस्सा भी आता था और उनसे ईर्ष्या भी होती थी।

अचला की आवाज़ सुनते-सुनते उसे महसूस हुआ था जैसे उसके भीतर पड़ा वह पत्थर धीरे-धीरे पिघल रहा हो। वह चाहता था कि अचला अपनी वात छोटे-छोटे वाक्यों में तराश कर उसके सामने रखती चली जाए ताकि वाद में आराम से उन फाँकों को जोड़कर वह कोई तस्वीर वना सके। लेकिन अचला की उस खुरदरी हँसी ने सारा नक़्शा वदल दिया था। उसकी निगाहों में से झाँकते हुए प्रश्नों के उत्तर में अचला ने कहा था, 'वस, अव जो पीछे छूट गया है, उसे छोड़ देना चाहिए, क्यों ? हमारा पहला जहाज़ी सफ़र है। ऐसे अवसर वार-वार नहीं मिलते। इसे फ़ज़ूल वातों में वरवाद नहीं करना चाहिए, क्यों ? वह देखो तो वह लहरें कैसी उछल रही हैं, मज़ा आ गया।'

उसके वाद सफ़र भर जव कभी कोई क्षण थोड़ी देर के लिए उन्हें एक-दूसरे से वांध लेने को होता तो अचला को कोई लहर उछलती दिखाई दे

राती या कोई तारा टूटता नजर आ जाता या दूर समुन्दर में कहीं-कहीं, कोई और जहाज उभर पड़ता। और वह उस खोए हुए क्षण से अकेला चिपका अचला की ओर देखता रहता।

उन क्षणों का दर्द फिर से ताजा नहीं करूँगा उसने सोचा। अचला को उछलती हुई लहरें बहुत पसंद थीं, उसने याद किया। पानी में डूबता हुआ सूरज, पानी से उभरता हुआ सूरज, जहाज के पहलुओं से बँधी हुई झाग की नीली-सब्ज जंजीर, पानी का अथाह रेगिस्तान, गीला अँधेरा, आधी रात की नम खमोशी, भरीया हुआ शांत या बिफरता हुआ अशांत समन्दर! अचला कहती, 'ऐसे माहौल में रह कर भी तुम न जाने क्यों इस कदर बुझे हुए से, सिमटे हुए से रह पाते हो, बाद में पछताओगे, क्यों?'

स्विमिंग पूल के किनारे खड़ा वह उसके दमकते हुए गर्म जिस्म पर से फिसलते हुए पानी की ओर देख रहा है। उसका स्विमिंग सूट हल्के आसमानी रंग का है। उसका जिस्म पारे की तरह है। कुछ दिनों तक वह झिझकती रही थी। फिर एक दिन कुलाचें भरती हुई, पारे की तरह तड़पती हुई-सी, वह उसके सामने आ खड़ी हुई थी। उसकी आँखें चुँधिया गई थीं और सारा शरीर लरज उठा था। वह एक झटके में अपने किसी मानसिक दलदल में से उछलकर बाहर आ गिरा था। अचला के जिस्म से धाराएँ फूट रहीं थीं। लेकिन फिर भी वह बेक़ाबू नहीं हो पाया था, क्यों? उसने सवाल किया। वह बेपरवाही से हँसती हुई बोली थी, 'हिन्दुस्तानी कुछ भी कहें, मैं जा रही हूँ।' वह स्विमिंग पूल में कूद पड़ी थी और पानी ने उसके जिस्म की आग को और प्रखर कर दिया था। और वह उस आग से दूर किनारे पर ही खड़ा रह गया था, क्यों?

वह क्षण मेरी शिकस्त का क्षण था, उसने सोचा। उसी क्षण में शायद मेरा अतीत मेरे भविष्य से जा उलझा होगा। या शायद मैंने पहली बार उस उलझाव को देखा होगा। नहीं! मैं अभी तक कुछ देख नहीं पाया, उसने फ़ैसला किया। लेकिन मेरी नजरों का रुख उस क्षण के बाद कभी पीछे की ओर होता तो कभी आगे की ओर। बीते हुए सबकी

कसक और आने वाले सब का खौफ़। वह क्षण दो सीमाओं का, दो दिशाओं का, दो लहरों का, मिलने का, एक-दूसरे को निगल जाने का क्षण था, उसने फ़ैसला किया। वह क्षण मेरे उस रेगिस्तान का जन्म-क्षण था, उसे बोध हुआ।

उसके बाद अचला सफ़र भर कभी अकेली नहीं दिखाई दी। हर समय कोई न कोई नया मुसाफ़िर उसके पास खड़ा उसकी मुस्कराहटों को समेटता हुआ दिखाई देता। वह हर समय कुछ न कुछ कर रही होती और वह एक तरफ खड़ा उसे देख रहा होता।

बस एक बार सफ़र की आखिरी रात को वह कुछ देर के लिए उसके पास आ खड़ी हुई थी। उसने कहा था, 'थोड़ी देर में जहाज़ साहिल से जा लगेगा।' वह खामोश रहा था। अचला ने धीरे से उसका हाथ दबा दिया था। लेकिन उस एक दबाव से क्या सारे सफ़र का दर्द चूसा जा सकता था?

उस क्षण की शिकस्त को स्वीकार करो, उसने अपने आपको सुझाया।

'ओल्ड पीपल्ज़ होम' के गेट पर वे दोनों पहरेदार गेंद बुझ चुके थे। बर्फ़ थम चुकी थी। हवा होती तो शायद खुशबू का कोई झोंका 'फ़्यूनरल होम' की ओर से उधर आ निकलता। 'कम्यूनिटी हॉल' पीछे छूट गया था, नहीं तो वह कुछ देर वहाँ सीढ़ियों पर बैठकर सिग्रेट पीता। खिड़कियों के परदे स्याह पड़ गए थे। दूर उसे अपने क़ैदखाने की रोशनी नज़र आ रही थी। अँधेरे में एक जलता हुआ घाव, उसने सोचा।

और उसी समय उसे वे दोनों दिखाई दिये थे। उसे महसूस हुआ जैसे वे एक साथ उसकी ओर बढ़ भी रहे हों और उससे दूर भी हटते चले जा रहे हों। पहले कभी ऐसा अजीब और असंभव-सा भ्रम नहीं हुआ था। बहुत दिनों बाद दिखाई दिए हैं, उसने सोचा, और उसके होंठ एक करारी-सी मुस्कराहट से चुरमुरा उठे, जैसे उसके मौन में सहसा एक दरार-सी पड़ गई हो···

• •

दूसरे का बिस्तर

काफी देर तक वे खामोश लेटे रहे—नंगे और अतृप्त।

विनोद का एक बाजू सिन्थिया के वक्ष पर पड़ा हुआ धीमे-धीमे उसकी साँसों के साथ झूल रहा था, दूसरा उसकी अपनी आँखों को दबाए हुए था, और आँखें जल रही थी। उसका बाकी शरीर सीधा पड़ा था, जैसे किसी निरीक्षण के लिए प्रस्तुत हो।

सिन्थिया के बालों का एक गुच्छा विनोद के कान से लिपटा हुआ था, उसका एक पाँव उसकी अपनी पिंडली मे चुभ रहा था, उसके होंठ आपस में कोई मौन परामर्श कर रहे थे, और आँखें एकटक छत की ओर उठी हुई थी।

बिस्तर की एक लम्बी अपरिचित सिलवट विनोद की पीठ के नीचे दबी पड़ी थी।

सिन्थिया अपनी गर्दन के निचले हिस्से पर विनोद की घड़ी का ठंडा स्पर्श महसूस कर रही थी, और घड़ी की महीन और तेज टिक-टिक उसके कानों मे धमक रही थी।

जल्दी में हटाए गए पलंगपोश का मुचड़ा हुआ ढेर उसकी टाँगों से उलझा

विनोद सोच रहा था—शायद मुझे करवट बदलकर सिन्थिया से पट जाना चाहिए।

सिन्थिया सिर्फ छत की ओर देख रही थी, और घड़ी की तेज और ीन धड़कनें सुन रही थी।

विनोद सोच रहा था—शायद मुझे आज यहाँ जिद नही करनी चाहिए। शायद मुझे यहाँ आना ही नही चाहिए था।

बिस्तर तक पहुँचने से पहले सिन्थिया ने उसे बहुत बार मना किया। कहती रही थी—"नहीं, विनोद यहाँ नहीं।"

लेकिन इस समय वह बिलकुल खाली-सी पड़ी थी। सोच कुछ भी नहीं ही थी, अपनी अतृप्ति के बारे में भी नही, विनोद की जिद या गलती के रे मे तो हरगिज नही। बस बीच-बीच मे उसे अकारण हँसी आती जा रही ी, और विनोद उस हँसी से बहुत परेशान हो रहा था। सोच रहा था—ह न जाने क्यों इस तरह हँसकर मेरा निरादर कर रही है। लेकिन सिन्थिया वल हँस रही थी।

बिस्तर तक पहुँचने से पहले वह उसके इनकार के जवाब में एक खामोश ाद मे उसे घूरता रहा था। फिर अचानक सिन्थिया ने कपड़े उतारने शुरू र दिए थे। कपड़े उतारते समय भी वह कहती रही थी—"नहीं, विनोद, हाँ नही।" विनोद को सहसा मायूसी के एहसास ने आ दबोचा था। फिर उसने लपककर खिड़कियों के पर्दे खींच दिए थे, और अँधेरे के कुछ धब्बे मरे मे इधर-उधर बिखर गए थे। बिस्तर के किनारे बैठकर उसने एक सिगरेट पी थी, और सिन्थिया खामोश लेटी हुई उसकी ओर देखती रही थी। आज पहली बार उसने सिन्थिया को नंगा देखा था, और उसे याद हो आया था कि सिन्थिया ने एक बार कहा था—"शायद कपड़ों के बगैर तुम्हें मेरा जिस्म पसन्द आए या न आए।" विनोद की ख्वाहिश हुई थी कि उससे कह दे—"सिन्थिया, कपड़े पहन लो।" लेकिन उससे गलतफ़हमी पैदा हो सकती थी। सिन्थिया के जिस्म ने उसका संशय दूर कर दिया था।—लेकिन फिर वह झिझक और मायूसी? विनोद ने अपनी झुँझलाहट से पीछा छुड़ाने

हुआ था। विनोद उसे नीचे धकेल देना चाहता था, लेकिन विस्तर की सरसराहट और सिन्थिया की खामोशी के डर से वह चुपचाप लेटा रहा।

सिन्थिया अपने वक्ष पर पड़े हुए उसके बाज़ू को उठाकर कहीं और रख देना चाहती थी, लेकिन उसके दोनों हाथ, एक-दूसरे में फँसे हुए, उसके अपने सिर के नीचे दवे हुए थे, और वह उन्हें वहाँ से हटाना नहीं चाहती थी।

विनोद सोच रहा था—वह न जाने क्या सोच रही है।

वह सोच कुछ भी नहीं रही थी, बस सिर्फ़ लेटी हुई थी—नंगी और अतृप्त। और उसकी कुहनी की नर्म नोक विनोद के होंठों पर पड़ी हुई थी।

विनोद ने धीरे से अपना मुँह परे हटा लिया, और सिन्थिया की कुहनी फ़िसलकर उसकी गर्दन पर आ गिरी। विनोद को उसकी चुभन बहुत नागवार लग रही थी।

कमरा गर्म अँधेरे में डूबता चला जा रहा था।

"तुम्हें नींद आ गई, विनोद ?" उसकी आवाज़ बहुत सूखी थी।

एक क्षण के लिए विनोद को महसूस हुआ जैसे उसे चुप रहने का वहाना मिल गया हो। उसकी ख्वाहिश हुई कि उस प्रश्न को खामोशी से पी जाए फिर उसने अनायास धीरे से कह दिया—"नहीं सिन्थिया, मैं जाग रहा हूँ।"

इस पर न जाने क्यों वे एक साथ एक सूखी और संक्षिप्त हँसी हँस दिये।

"अब हमें उठ जाना चाहिए।" सिन्थिया ने एक वेरंगी आवाज़ में छ से कहा।

विनोद ने उसके वक्ष पर से अपना वाज़ू हटाकर उसे अपने साथ विस्त पर लिटा दिया।

अब सिन्थिया अकेली हँस रही थी।

विनोद ने पूछा—"क्या वात है ?" और साथ ही फ़ैसला कर लिया कि अब और कोई सवाल नहीं पूछेगा।

'कुछ नहीं।" और सिन्थिया ने बहुत तेज़ी से अपनी हँसी को समे या।

विनोद सोच रहा था—शायद मुझे करवट बदलकर सिन्थिया से ट जाना चाहिए।

सिन्थिया सिर्फ़ छत की ओर देख रही थी, और घड़ी की तेज़ और न धड़कनें सुन रही थी।

विनोद सोच रहा था—शायद मुझे आज यहाँ ज़िद नहीं करनी चाहिए। शायद मुझे यहाँ आना ही नहीं चाहिए था।

बिस्तर तक पहुँचने से पहले सिन्थिया ने उसे बहुत बार मना किया। कहती रही थी—"नहीं, विनोद यहाँ नहीं।"

लेकिन इस समय वह बिलकुल ख़ाली-सी पड़ी थी। सोच कुछ भी नहीं थी, अपनी अतृप्ति के बारे में भी नहीं, विनोद की ज़िद या ग़लती के : मैं तो हरगिज़ नहीं। बस बीच-बीच में उसे अकारण हँसी आती आ रही और विनोद उस हँसी से बहुत परेशान हो रहा था। सोच रहा था—न जाने क्यों इस तरह हँसकर मेरा निरादर कर रही है। लेकिन सिन्थिया स हँस रही थी।

बिस्तर तक पहुँचने से पहले वह उसके इनकार के जवाब में एक ख़ामोश द से उसे घूरता रहा था। फिर अचानक सिन्थिया ने कपड़े उतारने शुरू : दिए थे। कपड़े उतारते समय भी वह कहती रही थी—"नहीं, विनोद, हाँ नहीं।" विनोद को सहसा मामूली के एहसास ने आ दबोचा था। फिर ने लपककर खिड़कियों के पर्दे खींच दिए थे, और अँधेरे के कुछ धब्बे मरे में इधर-उधर बिखर गए थे। बिस्तर के किनारे बैठकर उसने एक गरेट पी थी, और सिन्थिया ख़ामोश लेटी हुई उसकी ओर देखती रही। आज पहली बार उसने सिन्थिया को नंगा देखा था, और उसे याद हो या था कि सिन्थिया ने एक बार कहा था—"शायद कपड़ों के बग़ैर तुम्हें रा जिस्म पसन्द आए या न आए।" विनोद की ख़्वाहिश हुई थी कि उससे ह दे—"सिन्थिया, कपड़े पहन लो।" लेकिन उससे ग़लतफ़हमी पैदा हो रती थी। सिन्थिया के जिस्म ने उसका संशय दूर कर दिया था।—लेकिन र वह शिष्ट और मामूली? विनोद ने अपनी झुँझलाहट से पीछा छुड़ाने

के लिए कहा—"वक़्त न जाने क्या हो गया होगा ?"

सिन्थिया ने कोई जवाब नहीं दिया।

विनोद ने आँखों पर से बाज़ू हटा लिया, लेकिन आँखें नहीं खोलीं। बाज़ू कुछ क्षण छत की ओर उठा रहा।—"मुझे आज यहाँ नहीं आ चाहिए था," विनोद ने सोचा।

सिन्थिया ने ही उसे फ़ोन पर बताया था कि आज वह कुछ घंटों के लिए घर में अकेली है। आने न आने का फ़ैसला उसने विनोद पर छोड़ दि था। पिछले कई दिनों से वे किसी महफ़ूज़ जगह की तलाश में थे।

सिन्थिया ने हाथ बढ़ाकर बत्ती जला दी। विनोद की आँखें और सख से बन्द हो गई, लेकिन उसने कुछ कहा नहीं।

"अब हमें कपड़े पहन लेने चाहिएँ।" सिन्थिया ने एक बार फिर छ से कह दिया। उसकी आवाज़ बहुत कोरी थी, और उसकी आँखें अब भ छत की ओर उठी हुई थीं, जैसे रोशनी का उन पर कोई असर न हुआ ह एक बार उसने अपने जिस्म को उसकी पूरी लम्बाई तक सीधा किया, औ फिर एक झटके से उठकर बैठ गई।

विनोद कहना चाहता था, "रोशनी बन्द कर दो, और हँसो मत।"

"इस तरह लेटे हुए तुम बहुत सुन्दर दिखाई देते हो।" विनोद क अपने जिस्म की यह तारीफ़ बहुत बेजा और ग़ैरज़रूरी महसूस हुई। न जा वह क्या सोच रही है।

"यहाँ क्या हुआ था, विनोद ?"

सिन्थिया की एक उँगली विनोद के पेट पर खिंची हुई एक खराश सहला रही थी। विनोद खामोश रहा। सिन्थिया ने सवाल दुहराया नहीं।

"गुदगुदी नहीं होती तुम्हें ?"

विनोद ने 'न' में सिर हिला दिया।

अब वह फिर हँस रही थी। विनोद ने आँखें खोल दीं। रोशनी के दहकते हुए दायरे में बैठी हुई सिन्थिया। विनोद करवट बदलकर लेट गय और सिन्थिया के उठ जाने का इन्तज़ार करने लगा।

"मैं नहाने जा रही हूँ। तुम उठकर कपड़े पहन लो। देर बहुत हो गई झे डर लग रहा है कहीं···।"

बिस्तर छोड़ने से पहले सिन्थिया ने विनोद की पीठ पर एक हल्की-सी ी दी, और विनोद को महसूस हुआ जैसे उसे एक चपत मार दी गई

नहानी से पानी की आवाज़ आ रही थी। विनोद को महसूस हुआ जैसे भी-अभी किसी शिकंजे से रिहा हुआ हो। उसने उठकर रोशनी बन्द दी। एक क्षण के लिए सारा कमरा अँधेरे में गुम हो गया। विनोद ने ों से अपने कपड़े सँभाले, जैसे उन्हें उठाकर उसी तरह बाहर भाग जाना ता हो। फिर उसने कपड़े बिस्तर पर फेंक दिए और सिगरेट की तलाश धर-उधर देखने लगा। नहानी का दरवाज़ा खुला था। उसकी ख़्वाहिश कि लपक कर दरवाज़ा बाहर से बन्द कर दे।

"विनोद डार्लिंग, मेरा गाऊन। अच्छा रहने दो, मैं वहीं आकर···।"

विनोद अपने कपड़े उठाने के लिए बिस्तर पर झुक गया।

"अरे, तुम अँधेरे में क्या कर रहे हो? रहने दो, मैं सब ठीक कर दूँगी। जल्दी से कपड़े पहन लो।"

विनोद के हाथ में सिन्थिया का मसला हुआ गाऊन था। सिन्थिया ने च' की ओर हाथ बढ़ाया।

"सिन्थिया!"

उसका हाथ बीच में ही रुक गया। नहानी से फूट रही रोशनी की एक ीर फ़र्श पर बिछी हुई थी। कुछ देर तक वे दोनों खामोशी से कपड़े नते रहे, अँधेरे में।

"सिगरेट कहाँ है?"

"ड्रेसिंग टेबल के पास।"

"लाइटर?"

"तुम्हारे सिरहाने के नीचे होगा शायद।"

विनोद को 'अपना' सिरहाना ढूँढने में कुछ देर लग गई।

"बत्ती क्यों नहीं जला लेते ?" सिन्थिया की आवाज़ कुछ खिची हु
सी थी।

"मैं नीचे तुम्हारा इन्तज़ार करूँगा।"

"कुछ पीना हो तो…"

"नहीं, अब बाहर चलकर ही कुछ पिएँगे।" विनोद ने सीढ़ियों
जवाब दिया।

सिन्थिया ने कमरे में रोशनी कर दी थी।

"लेकिन नीचे जाने से पहले एक नज़र देख तो लिया होता, क
तुम्हारी कोई चीज़ इधर-उधर पड़ी न रह गई हो !"

विनोद को महसूस हुआ जैसे उसे फिर बिस्तर की ओर खींचा जा र
हो। सिन्थिया आईने के सामने खड़ी बाल बना रही थी। बिस्तर के पास फ़
पर कुछ पैसे बिखरे पड़े थे। विनोद उन्हें उठाने के लिए झुका तो उस
निगाह बिस्तर के नीचे पड़ी एक छोटी-सी गेंद पर जा रुकी। रेज़गा
उठाते हुए वह उस गेंद की ओर देखता रहा।

"वह लिफ़ाफ़ा कहीं तुम्हारा तो नहीं ?"

विनोद ने लिफ़ाफ़ा उठा लिया।

"नहीं।"

"तो फिर उसे वहीं पड़ा रहने दो।"

विनोद ने लिफ़ाफ़ा फिर वहीं रख दिया। वह बिस्तर ठीक कर दे
चाहता था, लेकिन उसे याद आया कि सिन्थिया ने अभी-अभी उसे म
किया था। एक सिरहाने पर एक लम्बा-सा बाल चिपका हुआ था। विन
कुछ देर उसे घूरता रहा, फिर उसने झुककर उसे उठा लिया।

—वह राखदानी नीचे लेते जाना, उसमें तुम्हारे सिगरेटों के टुकड़े
होंगे।

विनोद ने उस बाल को अपनी जेब में ठूँस लिया, और राखदानी उ
कर कमरे से बाहर निकल गया।

"लेकिन, सुनो, हम जा कहाँ रहे हैं ?"

"कहीं भी।" विनोद सीढ़ियों के पास पहुँच कर फिर ठिठक गया, हाँ।

"देखो, मेरी टाई यहीं-कहीं पड़ी होगी, नीचे लेती आना।"

"मुझे बहुत डर लग रहा है।"

विनोद को उसके लहजे में डर का कोई स्वर सुनाई नहीं दिया। वह अभी तक गाऊन पहने आईने के सामने खड़ी थी, और उसके नहाए हुए जिस्म से साबुन और पाउडर की महक उठ रही थी।

"तुम ज़रा जल्दी करो न?"

"समझ में नहीं आता क्या पहनूँ। अगर कहो तो वही साड़ी पहन लूँ जो…!"

"पागल हो?"

सिल्विया की हँसी में पागलपन के कोई आसार नहीं थे। विनोद तेजी से नीचे उतर गया। नीचे अँधेरा कम था। विनोद ने पर्दों को ठीक किया और बत्ती जला दी। मेज़ पर दो खाली गिलास पड़े हुए थे। उन्हें उठाकर वह रसोई में चला गया। 'सिंक' [पनाला] प्लेटों आदि से अटी हुई थी। उसने गिलास धोकर एक ओर रख दिए। एक छोटी मेज़ पर प्लास्टिक की दो छोटी-छोटी प्लेटें आमने-सामने पड़ी हुई थीं। एक प्लेट में उसे गोश्त का एक गीला-सा टुकड़ा दिखाई दिया, दूसरी में आधी 'स्लाइस' और कुछ उबले हुए मटर। कुछ देर वह उन प्लेटों पर घूरता रहा जैसे वहाँ कोई बैठा हुआ हो। फिर उसने उन्हें उठाकर 'सिंक' [पनाला] में डाल दिया। गोश्त का वह टुकड़ा अब भी प्लेट से चिपका हुआ था। उसे महसूस हुआ जैसे उसने किसी मरे हुए मेंढक को छू लिया हो। उसके होंठ भिंच गए।

वह वापस बैठक में आकर खड़ा हो गया। राखदानी में पड़े सिगरेटों के टुकड़ों को चुनकर उसने अपनी जेब में डाल लिया। हाथ से बासी तम्बाकू की बू आने लगी। लेकिन वह वापस रसोई में नहीं जाना चाहता था। दूसरे हाथ से वह रूमाल के लिए जेबें टटोलता रहा। रूमाल शायद ऊपर ही कहीं रह गया था। सिल्विया को आवाज़ देते-देते वह रुक गया। अगर कहीं नज़र आ गया तो वह खुद ही उठा लाएगी। लेकिन इतनी देर वह ऊपर न जाने

क्या कर रही है ? उसकी ख़्वाहिश हुई कि वह दरवाज़ा खोलकर दबे पाँ बाहर निकल जाए ।

कुछ देर पहले जब वह यहाँ आया था, तो सिन्थिया ने दरवाज़ा खोल ही कहा था—"तुम्हें यहाँ नहीं आना चाहिए था ।" जवाब में वह मुस्क दिया था । सिन्थिया को न जाने उसकी मुस्कराहट कैसी लगी होगी ।

"अब वापस चला जाऊँ ?"

सिन्थिया कुछ देर ख़ामोश रही थी ।

फिर उसने ज़ोर से दरवाज़ा बन्द कर दिया था, और वे दोनों झुकाए कुछ देर दरवाज़े के पास खड़े रहे थे ।

"अगर वे लोग किसी वजह से वक़्त से पहले लौट आए तो ?"

"तुम्हें फ़ोन नहीं करना चाहिए था ।"

"तुम्हें आना नहीं चाहिए था । वैसे मैं अपनी ग़लती मानती हूँ ।"

"और मैं अपनी ।"

इस मज़ाक पर उन्हें हँसी नहीं आई थी । फिर विनोद ने वहीं खड़े- उसे चूमना चाहा था । सिन्थिया ने मुंह फेर कर कहा था—"यहाँ न विनोद, चलो कहीं बाहर चलते हैं । कहीं भी ।"

"फ़ज़ूल बातों में वक़्त बरबाद नहीं करना चाहिए ।"

"लेकिन, सच कहती हूँ विनोद, यहाँ नहीं ।"

विनोद की निगाह बैठक में पड़ी एक बहुत बड़ी गुड़िया पर जा पड़ी और वह एक क्षण के लिए सहम गया था । उस क्षण अगर वह वापस गया होता तो···।

वह गुड़िया अब भी वहीं पड़ी थी । विनोद ने आगे बढ़कर उसे लिया । बहुत बड़ी-सी गुड़िया थी । विनोद उसे एक ओर सोफ़े पर रख वाला था, कि उसकी उँगली उसकी चाबी पर जा रुकी । उसने चाबी घुमा दी । गुड़िया के भीतर से आवाज़ आयी—"हाउ आर यू दिस मार्निंग ? वों यू सिट डाउन, प्लीज़···।"

गुड़िया उसके हाथों से नीचे गिर गई, और वह धप्प से सोफ़े पर बैठ

गया। गुड़िया के होंठ अब भी हिल रहे थे, लेकिन आवाज़ बन्द हो चुकी थी। सिन्थिया नीचे उतर रही थी। विनोद ने एक गद्दी उठाकर गुड़िया के ऊपर फेंक दी। गुड़िया बोली—"थैंक यू।"

"यह क्या कर रहे हो, विनोद ?" सिन्थिया की आवाज़ गुस्से से काँप रही थी। उसने गद्दी उठाई, फिर गुड़िया, और कुछ देर उसे देखती रही।

"लेकिन यह तुमने किया क्या ?"

"मैं इसे देख रहा था, नीचे गिर गई।" विनोद का लहज़ा किसी अपराधी बच्चे का-सा था।

"लेकिन यह गद्दी ?"

विनोद खामोश रहा।

"शुक्र है टूटी नहीं, वर्ना मेरी बच्ची बहुत रोती।"

सिन्थिया ने गुड़िया को फिर वहीं रख दिया जहाँ वह पहले पड़ी हुई थी। गुड़िया बोली—'थैंक यू।" विनोद सिन्थिया की हँसी में शामिल नहीं हुआ।

सिन्थिया ने हल्के गुलाबी रंग का लिबास पहना हुआ था। उसका भारी गर्म कोट उसके कन्धों से लटक रहा था। कुछ पता नहीं चलता था कि वह अभी-अभी बिस्तर से उठकर आई थी।

विनोद ने आँखें बन्द करके उसे अपने साथ लेटे हुए देखा।

कुछ देर वे खामोश खड़े रहे।

"सुनो, एक बात कहूँ, अगर बुरा न मानो तो ?"

विनोद जानता था कि वह क्या कहेगी।

"देर बहुत हो गई है, मैं आज तुम्हारे साथ कहीं बाहर न ही जाऊँ तो ठीक रहेगा। क्यों ?"

विनोद ने उसकी ओर देखे बग़ैर कहा, "अच्छा, तो मैं चलता हूँ।"

सिन्थिया खामोश रही। वह दरवाज़े की ओर बढ़ा। उसकी चाल बहुत लड़खड़ाती थी। सिन्थिया उसके पीछे-पीछे दरवाज़े तक आई। विनोद ने

दरवाज़ा खोला। एक बार मुड़कर उसने सिन्थिया की ओर देखा, फिर दरवाज़े से बाहर निकल गया।

बाहर बहुत सर्द हवा चल रही थी। विनोद की उँगलियाँ जेब में पड़े बाल, सिगरेट के टुकड़ों और टाई से उलझ रही थीं।

"सुनो, मैं कल तुम्हें फ़ोन करूँगी।"

विनोद को विश्वास नहीं हुआ, और उसकी चाल सहसा बहुत तेज़ हो गई। दरवाज़ा बन्द होने की आवाज़ उसे सुनाई नहीं दी।

• •

♠♠♠♠ इनकार

"कौन ?"

दो बरस पहले भी दरवाज़ा खोलने से पेश्तर उसने इसी तरह धीमी मगर साफ़ और सधी हुई आवाज़ में पूछा था।

"कौन ?" मानो नाम जाने बग़ैर दरवाज़ा खोलने से साफ़ इनकार हो।

उन दिनों हम—सुचित्रा और मैं—उससे मज़ाक़ किया करते थे—'यह तुम हमेशा एकदम चौकस क्यों रहती हो, जैसे चारों तरफ़ से ख़तरों और हादसों से घिरी हुई हो ? कभी तो अपने-आपको ज़रा सुस्ता भी छोड़ दिया करो, आख़िर इतनी भी क्या मुसीबत है ?"

और इस मज़ाक़ पर कभी तो वह सहसा गम्भीर हो उठती, जैसे कोई दर्द और सच्ची बात कह दी गई हो, और कभी बड़ी सरलता से हँस देती, मानो ख़ुद उसे अपने-आपसे इसी किस्म की बेशुमार शिकायतें हों, जिन्हें दूर कर पाने में वह असमर्थ हो।

मुझे उसकी ये दोनों प्रतिक्रियाएँ एक-सी पसन्द थीं—गम्भीरता में उसका चेहरा यूँ हो जाता, जैसे कोई भरा हुआ बादल हो, और हँसी में यूँ, जैसे सुबह की उजली और गुनगुनी धूप। लेकिन सुचित्रा को प्रायः उसकी

गम्भीरता और हँसी दोनों में ही कहीं बनावट के आसार दिखाई दे जाते। बाद में काफ़ी देर तक वह मेरे सामने उस बनावट के कई और नमूने पेश करती रहती और तंग आकर मुझे कहना पड़ता—"सुनो सुचिन्ता, अगर बुरा न मानो तो कहूँगा कि यह तुम्हारी ईर्ष्या बोल रही है।" इस पर वह ख़ामोश तो हो ही जाती. लेकिन बाकी का सारा दिन एक भद्दे-से तनाव में बीत जाता।

लेकिन उस रोज़ मीरा के दरवाज़े के बाहर खड़ा मैं सुचिन्ता के बारे में हरगिज़ नहीं सोच रहा था। मैं बहुत ख़ुश था कि मीरा घर में ही है औ दो बरस बाद भी उसके लहज़े में कोई तब्दीली सुनाई नहीं दी, उसक "कौन ?" अभी तक है और उन पुराने मज़ाकों की गुंजाइश अब भी होगी जिन पर उसका चेहरा कभी भरे हुए बादल-सा और कभी सुबह की उजल और गुनगुनी धूप-सा हो जाया करता था। अभी-अभी वह दरवाज़ा खोले और मुझे देखकर एकदम हैरान रह जाएगी, कहेगी···। मैं बहुत ख़ुश और सुचिन्ता की पहुँच से बहुत दूर। महसूस हो रहा था, जैसे दबे पा आकर मैंने पीछे से मीरा की आँखें बन्द कर ली हों, और वह मेरा स्पर्श पहचानकर अब दोबारा एक लतीफ़-सी झुंझलाहट से पूछ रही हो—'कौन

मुझे उस झुंझलाहट पर हँसी आई, लेकिन मैं ख़ामोश खड़ा रहा। से ही हमारे सम्बन्धों में एक बचकाना पहलू बना चला आ रहा था, जो पसन्द था। उसी के आधार पर मैं उसके सामने तमाम अन्दरूनी उलझन बावजूद एक प्रकार की स्वच्छन्दता अनुभव कर पाता था। मैं उन उल को भीतर ही दबाए रखना चाहता था।

फिर एकाएक दरवाज़ा खुला और वह सहमकर एक कदम पीछे गई। मैं हँस देता, लेकिन उसने अँग्रेज़ी लिबास पहन रखा था और उ पीछे हटने की अदा मुझे कुछ बेगानी-सी प्रतीत हो रही थी। उस क्षण मुझे सुचिन्ता के वे पुराने आक्षेप याद हो आए। साथ ही मैंने तेज़ी से कि साड़ी में मीरा के जिस्म का निखार कुछ और ही हुआ करता महसूस हुआ जैसे अपने नए लिबास के मुताबिक उसने अपनी कुछ अद

बदल डाली हो। शायद इस अहसास पर मुझे कुछ निराशा भी होती, लेकिन अब उसके दोनों हाथ निस्संकोच मेरी ओर उठे हुए थे। मैंने उन्हें थामकर उसे चूम लिया। उस समय और उसके बाद भी मुझे अपनी यह हरकत बहुत दिलेराना महसूस होती रही। उससे पहले, सिवाय मजाक के, मीरा से कभी हाथ तक नहीं मिलाया था। लगा, जैसे हम दोनों ने दो बरस की जुदाई का एक हद तक नाजायज़ फायदा उठा लिया हो। मुझे यह खयाल भी आया कि अगर मीरा की शादी किसी हिन्दुस्तानी से हुई होती तो मैं इस तरह उसे छूने या चूमने की हिम्मत न कर पाता। इस विचार से मुझे राहत कम हुई और कोफ़्त ज्यादा।

बहरहाल उसके होंठों का वह संक्षिप्त स्पर्श मेरे होंठों में बस चुका था, और मैं सुन रहा था—"तुम ? यहाँ ? सच यकीन नहीं आता! लेकिन सुचिन्ता कहाँ है ?"

सुचिन्ता के बारे में पूछकर उसने मानो मुझसे कुछ छीन लिया हो। मैंने बहाना किया, जैसे मैंने उसका आखिरी सवाल सुना ही न हो और उसके हाथों को दबाते हुए कहा—"*अब क्या यहीं खड़ा रखोगी या अन्दर ले जाकर* अपने उस मियाँ से भी मिलाओगी ?"

इस पर उसके हाथों की गिरफ़्त कुछ ढीली पड़ गई, या, कम-से-कम मुझे ऐसा महसूस हुआ, जैसे उसकी किसी गलती का बदला मैंने उससे भी एक बड़ी ग़लती से ले लिया हो।

वैसे दिल्ली से यहाँ तक के हवाई सफर के दौरान उस मुलाक़ात के पहले क्षणों का कुछ वैसा ही नक्शा मेरे दिमाग में उभरता रहा था। मैंने सोचा था कि मुझे देखकर उसका चेहरा पहले एकदम फीका पड़ जाएगा, जैसे किसी तेज़ झोंके से चिराग़ की लौ लड़खड़ाकर दुबक-सी जाती है। फिर एक दिलफरेब अदा से वह अपनी उन बेचैन आँखों को तेज़-तेज़ झपकारेगी, कुछ बनावटी शरारत से और कुछ सच्चे विस्मय में। इस बीच उसका उड़ा हुआ रंग वापस लौट आएगा। और फिर वह एक बहुत गहरी आवाज़ में कहेगी—"तुम ? यहाँ ? सच…?"

यहाँ तक तो मैंने कई बार सोचा था। हैरानी में डूबे हुए उसके तमतमाए हुए चेहरे की आँच को महसूस किया था, उसकी आवाज़ की गहराई से आश्वस्त होता रहा था, लेकिन हर बार मेरी कल्पना एक ऐसे प्रश्न पर पहुँचकर ठिठक जाती रही थी कि जिसका सामना मैं नहीं करना चाहता था। उससे मीरा से दो बरस बाद अचानक जा मिलने की उस बेकरार उमंग में कई प्रकार की सिलवटें-सी पड़ने लगती थीं। वह प्रश्न भी बहुत साफ़ नहीं था, लेकिन फिर भी उससे कई किस्म की उलझनों का संकेत मिलता था, जिन्हें मैं बदस्तूर उसी अन्धेरे में पड़ा रहने देना चाहता था, जहाँ वे शुरू से बन्द चली आती थीं।

मीरा के साथ अपने सारे सम्बन्ध को मैंने जिन ख़ुफ़िया सीमाओं मे बाँध रखा था, उन्हें तोड़ डालने का वक़्त अब बीत चुका था। उन्हें शायद अब ज़िन्दगी-भर निभाना होगा और इस लम्बे दायित्व का बोझ सह उठाए रखने का एक ही तरीका है, मैं सोचता कि मैं उस बोझ को भूला रहूँ उसके अस्तित्व से इनकार करता रहूँ, और इनकार के तमाम अवसरों प सिर्फ़ मेरा काबू रहे।

सो मैं न्यूयॉर्क में अपना काम ख़त्म कर, हँसी-मज़ाक में ही मीरा जुदा हो जाना चाहता था। शायद इसलिए भी मैंने बात का रुख़ जल्दी उसके पति की तरफ़ मोड़ दिया हो। मीरा को ख़ामोश देख मैंने एक बा फिर कहा—"सच, बताओ तो, वह ख़ुशकिस्मत आदमी कहाँ है ?"

अब हम अन्दर जाकर बैठ चुके थे और मैं उचक-उचककर इधर-उध देख रहा था, जैसे मीरा ने अपने पति को वहीं-कहीं छिपा रखा हो।

"आज उसे लाइब्रेरी में कुछ देर हो गई होगी। बस अब आता होगा।"

उसके लहज़े से लगा, जैसे वह अपने पति के किसी दोस्त को कुछ और इन्तज़ार करने के लिए कह रही हो, मैं ख़ामोश हो गया और मीरा निगाह कुछ देर तक मेरे पाँवों पर जमी रही।

मैं इस ख़ामोशी को तोड़ डालना चाहता था, क्योंकि ख़ामोश रह

हम दोनो एक-दूसरे के बारे में कुछ भी सोच सकते थे। मैं अपने-आपको या उसे यह स्वतन्त्रता नहीं देना चाहता था। मैंने कहा—"तो कहो, कैसी हो, मीरा!"

कहते-कहते एक बेहूदा-सी मुस्कराहट मेरे होठो पर खिल आई।

"मैं तो ठीक हूँ, तुम अपनी बताओ।"

"मैं भी ठीक ही हूँ।"

ख्वाहिश हुई कि उसी दम फिर कभी आने की रस्मी-सी बात कहकर इजाज़त माँग लूँ। बहुत देर बाद किसी भी आत्मीय को मिलकर एक अजीब किस्म की निराशा होती है, लेकिन वहाँ तक पहुँचने से पहले मैंने उस निराशा के बारे में नहीं सोचा था।

"आज ही यहाँ पहुँचे हो क्या?"

"हाँ, आज ही।"

"अकेले?"

"हाँ, अकेले।"

"सुचित्रा कैसी थी?"

किसी एक बात पर एकदम रुक-सा जाने की उसकी आदत उन दिनों भी बहुत परेशान किया करती थी। जब तक उसका कोई शुबहा दूर न हो जाए या उसके किसी सवाल का उसे साफ़ और सही जवाब न मिल जाए, वह आगे बढ़ने में इनकार-सा कर दिया करती थी। ऐसे अवसरों पर उसका खयाल बदल डालने के लिए मैं हवा में एक मुक्का तान कर उसीकी आवाज़ में एक नारा बुलन्द किया करता था। इस याद पर मुझे हँसी आ गई और मैंने ज़ोर से कहा—"मेरी माँगें पूरी करो!"

मीरा शायद मेरा इशारा समझी नहीं। मुझे कुछ बुरा लगा। महसूस हुआ जैसे मैं उस ज़माने की उन पुरानी यादो से चिपका हुआ था और मीरा उनसे कहीं दूर जा पहुँची हो। वह बनी-सँवरी-सी मेरी ओर देख रही थी और मैं मसखरों की-सी हरकतें कर रहा था। मैंने अपनी हँसी को समेटकर फ़ैसला किया कि जो पूछेगी उसका रवायती-सा जवाब देता चला जाऊँगा।

"कहाँ खो गए ? मैंने सुचिन्ता के बारे में पूछा था।"

"वह भी ठीक ही होगी। मैं आते समय उससे मिल नहीं सका, आने का सिलसिला बहुत जल्दी से अचानक ही बन गया था।"

अगर उसने चौंककर मेरी बात पर अविश्वास व्यक्त कर दिया होता तो शायद हँसी-हँसी में मैं उसे बता देता कि अब सुचिन्ता से मेरा कोई सरोकार नहीं रहा। शायद बात को ही खत्म कर डालने के लिए मैं संक्षेप में उसे वह सारा किस्सा भी सुना देता और बाद में कहता—"अब सुचिन्ता को मारो गोली, कोई और बात करें।"

लेकिन वह सुचिन्ता के बारे में मेरी बेरुखी पर चौंक उठने की बजाय एक मौन विस्मय से मेरी ओर देखती रही, मानो कह रही हो, अगर बताना नहीं चाहते तो न सही, लेकिन···। मैंने कहा—"तो आज मेरी शान में दावत तो होगी न ?"

"हेनरी के आ जाने पर बात करेंगे।"

मैं कुछ देर से हेनरी को भूला हुआ था। सँभलने की कोशिश में मुझे खामोश रहना पड़ा। कई प्रकार के विहंगम विचार फिर मन में उठ खड़े हुए। याद आया कि सुचिन्ता के साथ मीरा का कभी भी कोई खास लगाव नहीं रहा। मेरी ही खातिर वह उसे बरदाश्त भर कर लिया करती थी। शायद सुचिन्ता से मेरा नाता टूट जाने की बात पर वह खुश हुई होगी। लेकिन ज़ाहिर नहीं होने देगी। किसी भी बात पर मीरा की प्रतिक्रिया सीधी और साफ़ नहीं होती। तो क्या सुचिन्ता का यह आरोप कि 'मीरा बनती है,' ठीक था ?

मुझे कुछ-न-कुछ बोलते रहना चाहिए, मैंने सोचा। दो व्यक्ति जब इतनी देर बाद विदेश में एक-दूसरे से मिलते हैं तो हज़ारों बातें होती हैं। कुछ देर तक मैं उन हज़ारों बातों में से कोई एक बात काट निकालने की कोशिश करता रहा। फिर न जाने क्यों मैंने अपने-आपको यह कहते हुए सुना—"देखो मीरा, मेरे इस तरह आ धमकने से तुम्हारा कोई प्रोग्राम खराब हो रहा हो तो बता दो, मैं फिर कभी आ जाऊँगा। और अभी तो मैं

हाँ कम-से-कम तीन महीने रहूँगा। वैसे भी सफ़र की थकान अभी दूर नहीं ई। सामान तक नहीं खोला, और न ही किसी को अपने आने की इत्तला र दी है। अच्छा तो…।"

कहते-कहते वाकई मैं उठ खड़ा हुआ था, मानो उसने किसी संकेत से पष्ट कर दिया हो कि मेरा आना उसे अखर रहा है। मेरा गला भी कुछ-छ भर आया था और मुझे अपने-आप पर सख्त गुस्सा आ रहा था।

"यह तुम कर क्या रहे हो?"

"ड्रामा?"

इस पर हम एक साथ हँस दिए। गले की रुकावट आँखों तक पहुँचकर पिघल गई। 'ड्रामा' हमारी उस पुरानी शब्दावली का एक खास शब्द था। हम तीनों में से जब कभी कोई किसी बात पर अतिभावुक हो उठता तो मज़ाक और गुस्से के मिले-जुले लहजे में उस पर 'ड्रामा' करने का इल्ज़ाम लगाकर उसे झंझोड़ दिया जाता था। अगर कभी निशाना सुचिन्ता पर बैठता तो वह ठीक होने की बजाय और बिगड़ जाया करती थी।

मीरा के मुँह से इस शब्द को सुनकर मैं फिर कुछ आश्वस्त हो गया था।

लेकिन दोबारा बैठ जाने के बाद हम फिर ख़ामोश हो गए। मुझे याद आया कि उस ज़माने में भी हम आपस में बातें बहुत कम कर पाते थे। अकेले बैठने का मौका ही बहुत कम मिलता था। सुचिन्ता हमेशा साथ रहती थी। तीन आदमी एक साथ ख़ामोश नहीं बैठ सकते। मैंने सोचा, और ख़्वाहिश हुई कि इस समय भी अगर कोई तीसरा हमारे साथ होता, या हम किसी तीसरे के बारे में खुलकर बात ही कर रहे होते तो शायद हम आसानी से वे तमाम बातें कर जाते जो दो व्यक्ति एक-दूसरे को बहुत देर बाद मिलने पर करते होंगे—वे तमाम, हज़ारों बातें।

फिर मैंने महसूस किया कि जब तक मैं मीरा को सुचिन्ता के बारे में साफ़-साफ़ कुछ बताऊँगा नहीं, उसका साया हमारे आसपास काँपता रहेगा। महसूस हुआ, जैसे हम दोनों अँधेरे में खड़े किसी एक ही चीज़ की

ओर घूर रहे हों, उसी से बचने के उपाय सोच रहे हों। साथ ही यह अन्दे भी हुआ कि सुचिन्ता का किस्सा सुना देने के बाद हमारे पास बात करने लिए या सोचने के लिए कुछ भी नहीं रहेगा। और मुझे उन तमाम खुफ़ि सीमाओं का सामना करना पड़ेगा जिनके उस पार खड़ी मीरा शायद म ही-मन मेरे इस तरह आ धमकने पर परेशान हो रही हो।

लेकिन वह निस्संकोच मुस्करा रही थी, जैसे उसे न कोई अन्देशा हो न कोई प्रतीक्षा। उसकी बेनियाज़ी पर सहसा मुझे बहुत रंज हो आया।

मैंने सब अन्दरूनी रुकावटों को झटककर अचानक कह दिया—"देखो, मीरा, सुचिन्ता के बारे में पूरी बात कभी फिर बताऊँगा। इस वक़्त इतन ही काफ़ी है कि वह मेरे साथ नहीं आई। शायद उसे मालूम भी न हो कि मैं यहाँ हूँ। वैसे हम कई महीनों से एक-दूसरे से मिले भी नहीं। वह दिल्ल में ही है, और उसकी शादी हो चुकी है।"

मुझे लगा, जैसे न चाहने पर भी मैंने बहुत-कुछ उगल दिया हो। मीर विस्मित-सी मेरी ओर देख रही थी, जैसे जो बाकी बच गया था उसक प्रतीक्षा कर रही हो। लेकिन उससे ज्यादा मैं कुछ भी नहीं कहना चाह था। शायद इसके अलावा कुछ कहने को था भी नहीं। बाकी की सदा ब बड़ी आसानी से कल्पना कर सकती है, मैंने सोचा।

"लेकिन मैं कुछ समझी नहीं। तुम्हारा मतलब है उसकी शादी कि और से हो गई है? पहेली-सी बुझाने के बजाय बात साफ़-साफ़ क्यों न करते?"

"अब तुम 'ड्रामा' कर रही हो।"

अब की बार हममें से कोई भी हँस नहीं पाया। फिर भी 'ड्रामा' क का आरोप इस हद तक कारगर ज़रूर हुआ कि मीरा ने सवाल दुहरा नहीं। लेकिन मैं जानता था कि कुछ देर बाद फिर वह उसी सवाल क ओर लौट आएगी। महसूस हुआ, जैसे सुचिन्ता ही हमारी दोस्ती का ए माना हुआ ठोस आधार रही हो। हालाँकि मीरा और मैं एक-दूसरे को ब पहले से जानते थे, सुचिन्ता के आने से भी बहुत पहले। लेकिन तब हम

जान-पहचान इस हद तक ही हुआ करती थी, मैंने याद किया, जहाँ हमें किसी तीसरे की पनाह लेने की ज़रूरत महसूस नहीं होती थी। महसूस हुआ, जैसे सुचिन्ता ने ही हमारे सम्बन्धों को सतही जान-पहचान के स्तर से उतारकर उन्हे एक अन्धी गहराई दे दी हो।

मैंने उस समय तक ऐसा कभी नहीं सोचा था। सहसा मुझे डर-सा महसूस हुआ, जैसे अन्धेरे में कुछ अरुचिकर दिखाई दे गया हो।

"हेनरी आज न जाने कहाँ रुक गया।"

मैं चौंक उठा। मैं फिर भूल गया था कि हम और बातों के साथ हेनरी का इन्तज़ार भी कर रहे थे। मैंने हेनरी को एक-दो बार ही देखा था। दो बरस पहले, जब उनकी शादी नहीं हुई थी। जब मीरा हेनरी के साथ चल रहे अपने प्रसंग को 'एक झमेला' कहकर मुस्करा दिया करती थी।

"मेरा ख़याल है, मैं इतने में कपड़े बदल लूँ। फिर उसके आते ही कहीं बाहर चलकर बैठेंगे। बहुत दिनों से हम कहीं भी नहीं गए। अगर हो सका तो कोई ड्रामा देख लेंगे, खाने के बाद, क्यों?"

"हाँ ठीक है, तुम कपड़े बदल लो।" मेरी नज़रें एक तसवीर पर जाकर रुक गई थीं, जिसमें मीरा ने शादी का सफ़ेद गाउन पहन रखा था, और हेनरी झुककर उसे चूम रहा था।

"तुम बीअर लोगे?"

"हाँ।"

"फ्रिज में देख लो।"

कुछ देर मैं अकेला बैठा बीअर पीता रहा। सफ़र की सारी थकान सिमटकर आँखों में सुलगने लगी, लेकिन बाकी का जिस्म बहुत हलका हो गया। मैं कुछ फैलकर बैठ गया, जैसे कोई चिन्ता न हो, और मेरे होंटों पर एक सन्दर्भहीन मुस्कराहट मचलने लगी, जैसा कि प्रायः बीअर पीते समय मेरे साथ होता है। कितनी भी कोशिश क्यों न करूँ, मैं उस मुस्कराहट को मिटा नहीं सकता। अगर मीरा उस समय पास होती तो ज़रूर पूछ लेती—"किस बात पर गुदगुदी हो रही है, तुम्हें?"

मीरा की आवाज़ सुनाई दी—"सुनो, तुम हाथ-वाथ धोना चाहो तो बाथ रूम खाली है।"

"लेकिन है किधर ?"

"इसी कमरे में से रास्ता है।"

उठने से पहले मैंने गिलास खाली कर दिया।

बेडरूम के दरवाज़े के बाहर मैं रुक गया।

"हाँ-हाँ, चले आओ, वह सामने बाथरूम है।"

कमरे में रोशनी थी। मीरा पलंग के पास ड्रेसिंग टेबल के सामने खड़ी बाल बना रही थी। एक क्षण के लिए मेरी निगाह शीशे की ओर गई जहाँ से वह मेरी तरफ़ देख रही थी। अस्त-व्यस्त बिस्तर पर किताबें ताश के पत्तों की तरह बिखरी हुई थीं। बहुत-से जूते इधर-उधर गिरे पड़े थे। मीरा के कदमों के पास उसके उतारे हुए कपड़ों की छोटी-सी ढेरी बनी हुई थी।

बाथरूम का दरवाज़ा खोलते हुए मैंने कहा—"बिल्कुल कुंवारों का-सा कमरा है।"

मीरा ख़ामोश रही।

कुछ देर बाद मैं बाहर निकला तो वह उसी कोने में खड़ी साड़ी ठीक कर रही थी। मैं कुछ कहना चाहता था, शायद कुछ साड़ी के ही बारे में, लेकिन वह बहुत व्यस्त थी। मैं कमरे से बाहर निकलने ही वाला था कि उसने पूछा—"देखो, यह साड़ी ठीक है न ?"

मैं रुक गया। दो कदम वापस लौटकर मैंने उसकी तरफ़ देखा। शीशे में हम दोनों पास-पास खड़े थे। मैं कुछ चौंककर एक तरफ़ हट गया, शीशे के फ़ोकस से बाहर।

'उम्दा है, लेकिन इतना तकल्लुफ़ करने की क्या जरूरत थी ?" मैंने यूँ कहा जैसे उसने मेरे सामने बहुत कुछ परोस दिया हो।

"बहुत बेवकूफ़ हो, मैं तुम्हारे आने की खुशी में···।"

"ड्रामा बन्द।"

उसने हँसते हुए कहा—"अच्छा तुम जाकर और बीअर पीओ, मैं

अभी आती हूँ।"

मैं बाहर आकर बैठने ही वाला था कि दरवाज़े पर दस्तक हुई। मैं हेनरी को फिर भूल चुका था।

"ज़रा देखना तो शायद हेनरी ही होगा।"

मुझे कुछ संकोच हुआ। दरवाज़ा उसे खुद खोलना चाहिए था। बाहर कोई सीटी बजा रहा था। मैंने दरवाज़ा खोल दिया। हेनरी ने मुझे तत्काल पहचाना नहीं। मैंने हाथ बढ़ाते हुए कहा—"मीरा कपड़े बदल रही है, मैं आज ही दिल्ली से आया हूँ, शायद पहचाना नहीं?"

"मैं मुआफी चाहता हूँ। अरे हाँ, अब याद आया।"

उसे शायद याद कुछ भी नहीं आया था, लेकिन वह बड़े तपाक से मेरा हाथ हिला रहा था, और हँस रहा था।

अन्दर से मीरा की आवाज़ आई—"डार्लिंग, मैं बस एक मिनिट में आ रही हूँ।"

हेनरी ने ब्रीफकेस एक ओर रखते हुए कहा—"बैठो न। मैं भी एक गिलास ले आऊँ।"

इतने में मीरा ने आकर अपने होंठ हेनरी के होंठों तक ले जाकर उसे चूम लिया। मैं बैठ चुका था और अपने गिलास की ओर देख रहा था, जो अब खाली था। इस बीच हेनरी ने ज़रूर किसी इशारे से मेरे बारे में कुछ ूछा होगा और मीरा ने किसी इशारे से उसे कुछ बता दिया होगा, क्योंकि रे गिलास में बीअर डालते हुए हेनरी मुझसे पूछ रहा था—"तो बताओ ोस्त, सुचिन्ता कैसी है? साथ तो आई होगी?"

मैंने आँख उठाकर मीरा की ओर देखा। वह हेनरी के सवाल पर स्कराई नहीं।

मैंने हेनरी की ओर देखते हुए कहा—"सुचिन्ता बड़े मज़े में है। साथ ा आई है, लेकिन यहाँ रुकी नहीं। सीधी बॉस्टन चली गई है। मैं भी आज त की गाड़ी से वहीं जा रहा हूँ। हम तीन महीने वहीं रहेंगे, और फिर पस दिल्ली।"

कहते-कहते मेरा गला सूख गया था। लेकिन मेरा गिलास लबालब भरा हुआ था। और मीरा मेरी तरफ़ देख रही थी, जैसे उसी समय पहली बार उसने मुझे देखा हो।

♠ ♠ ♠ ♠ ♠

मरी हुई मछली

रवाजे के बाहर आहट का आभास पाते ही वह उछल कर खड़ा हो गया। कि उस समय उसे कोई प्रतीक्षा नहीं थी, और न ही वह पिछली शाम के बारे में सोच रहा था। बस यू ही बिस्तर में पड़ा हुआ था, खाली और बेसबब, उस कमरे के परायेपन को अपने इर्द-गिर्द लपेटे हुए, अप्राकृतिक-सा।

रात भर उसे नींद नहीं आई थी। महसूस होता रहा था जैसे चारों तरफ फास्फोर रोशनी के बगूले उड़ रहे हों। बीती शाम के चीथड़े उसके भीतर फड़फड़ाते रहे थे। रात भर। सुबह होने तक उन सबका एक विक्षुब्ध-सा उन्माद बनकर उसके मस्तिष्क में जम गया था, और वह अपने आपको बहुत बेदम और कमजोर अनुभव कर रहा था, मानो रात भर कोई जानवर उसे कुतरता रहा हो।

उस नर्म-सी आहट पर अपने आपको उछलता देखकर उसे भ्रम हुआ, जैसे वह दो टुकड़ों में विभक्त हो गया हो। अपने टुकड़े होते देखने का वह आदी हो चुका था। उसे एक खामोश और सुस्त-सी हंसी आई। कुछ क्षण वह बिस्तर को घूरता रहा, मानो वहीं पड़े रह गए अपने अधेड़ और कमजोर

हिस्से को भस्म कर डालने की चेष्टा कर रहा हो।

रात भर वह तड़पा ज़रूर था, लेकिन इस इन्तज़ार में नहीं कि सुबह वह आएगी। अगर उस रात की उत्तेजना में यह उम्मीद भी शामिल होती तो सुबह होते तक वह शायद पागल हो गया होता।

रात भर वह उसके बारे में सोचता-कसमसाता रहा था। उसके बारे में नहीं, उसके पति के बारे में। नहीं, उन दोनों के आपसी सम्बन्ध के बारे में। नहीं, सिर्फ़ अपने बारे में। मैं हमेशा सिर्फ़ अपने ही बारे में सोचता हूं।

दरअसल वह अपनी उस हरकत के बारे में सोचता रहा था, जिससे वह शाम एकाएक टूट गई थी। वह सोचता रहा था कि क्या वह हरकत उसने जान-बूझकर उसे तोड़ डालने के ही लिए की थी? इस सवाल से उसे एक अपरिचित-सा आश्वासन मिलता रहा था, मानो उसने कुछ साबित कर दिखाया हो, मानो उसने अपने व्यक्तित्व से विद्रोह करके, अपने व्यतीत को झुठलाने के लिए ही, वह हरकत की हो, जिससे वह नाज़ुक शाम एकाएक दरहम-बरहम हो गई थी। लेकिन वह जानता था कि जान-बूझकर वह कुछ भी नहीं कर सकता। फिर भी लेटे-लेटे वह बार-बार बिना मतलब हं उठता रहा था। एक-दो बार उसने अपने आपको यह कहते भी सुना था— मैं अपने किए पर बहुत खुश हूं। हालांकि वह जानता था कि उसने कि कुछ नहीं था। बस यूं ही अपने आप उससे कुछ हो भर गया था। फिर भी वह रात और कई रातों की तरह पश्चात्ताप में झुलसकर गुज़ारने के बजाय उसने एक अजीब और मीठी बेचैनी में गुज़ारी थी। लेकिन वह जानता था कि वैसी बेचैनी का कोई भविष्य नहीं होता। इसीलिए शायद सुबह होते तक वह बिल्कुल खाली हो गया था। और उसे महसूस हो रहा था जैसे रात भर कोई जानवर उसे चूसता रहा हो।

●

लेकिन अब उस आहट पर वह उछल कर खड़ा हो गया था, मानो व स्वयं नहीं बल्कि उसकी बगल से कोई दूसरा आदमी उठ खड़ा हुआ हो कोई ऐसा आदमी जिसे यकीन हो कि बाहर वही खड़ी होगी।

उसे महसूस हुआ जैसे भीतर थमा वह गुच्छा अंगडाई ले रहा हो, खुलकर एक खूबसूरत जाल में फैल जाने को हो।

उसकी ख्वाहिश हुई कि वह अपने आपको समेटकर चुपचाप फिर बिस्तर में पड रहे। उस शाम का अन्त हो चुका है, उसने सोचा। लाश का स्वागत नहीं करना चाहिए, उसने अपने आप को समझाया। लेकिन अगर इसी क्षण मैंने दरवाज़ा न खोला तो उम्र भर यह आहट भीतर कसकती रहेगी। उसने लपककर दरवाज़ा खोल दिया।

बाहर दीवार से टेक लगाए वह खड़ी थी—सिर झुकाए, बेआवाज़, जैसे रात भर वहीं खड़ी रही हो, और वह आहट उसके वहाँ आने से नहीं, बल्कि उसके वहाँ होने की पहचान भर से पैदा हो गई हो।

उसके बाल जैसे एक काला गुबार हों। गर्दन पर कुछ खरोंचें खिंची हुई थी, जो कल शाम नहीं थी। आँखों में एक वहशियाना अनुरोध सुलग रहा था, और चेहरा डूबा हुआ था। सारा कॉरिडॉर उसके बदन से महक रहा था।

वह सहमकर एक कदम पीछे हट गया। इतनी खूबसूरती इतने पास से उसने आज तक नहीं देखी थी। कल शाम की नासूर-सी वह मानो रातों-रात पककर उसके सामने आ खड़ी हुई हो।

कल शाम अन्त में उसके पति ने कहा था—आज रात मैं शायद इसे जान से मार डालूं। अगर तुम इसे बचाना चाहते हो, तो आज रात इसे अपने कमरे में रख लो। यह सुनते ही वह एक दबे स्वर में चीख उठी थी और आसपास खड़े सब लोग स्तब्ध रह गए थे। लेकिन वह अपलक उन दोनों की ओर देखता रहा था। जैसे उन दोनों के बीच वह बिल्कुल तटस्थ हो। फिर अपने पति के संग हो लेने से पहले उसने एक नज़र उसकी ओर देखा था। वह नज़र भी एक चीख ही थी, उसने याद किया।

शायद इस समय वह उसी नज़र की व्याख्या करने आई है? शायद वह मुझे उन सारी बदमज़गियों के लिए मुजरिम ठहराने आई है? शायद वह अपने पति से बदला लेने आई है? शायद वह सब फिर, अकेले में सुनने आई

है, जिस पर उसका पति कल शाम पागल हो गया था।

उसके पति के पागलपन की याद से वह काँप उठा। रात भर उस ख़ से उसे जो आश्वासन मिलता रहा था, एकाएक उसका स्थान फिर ए असह्य खौफ ने ले लिया।

मैं कुछ पूछूंगा नहीं। मैं कुछ भी पूछ नहीं सकता। मैं केवल इन्तज़ा कर सकता हूँ। लेकिन इन्तज़ार किस बात का ?

इस सवाल के साथ ही रात भर जिन चकाचौंध बगूलों ने उसे गरमाक तड़पाया था, वे सब बुझ गए, और उसे महसूस हुआ जैसे वह अंधेरे में खड़ा रो रहा हो। उसे अपने आप पर बहुत दया हो आई। जैसे एकदम व गिलगिला गया हो। उसकी ख्वाहिश हुई कि उससे मुआफ़ी माँग ले। लेकिन मुआफ़ी किस बात की ?

* * *

उसने आँख उठाकर उसकी ओर देखा। एक क्षण के लिए वह उसकी नज़र में तैर-सी गई। फिर सोई-सोई-सी कमरे के अन्दर बढ़ आई। बिस्तर पर बैठने से पहले उसने कहा, "दरवाज़ा बन्द कर दो।" वह कुछ देर दरवाज़े के पास खड़ा रहा, उसकी ओर पीठ किए हुए। उसकी ख्वाहिश हुई कि उसे वहीं छोड़कर कमरे से बाहर चला जाए। फिर उसने धीरे-से दरवाज़ बन्द कर दिया और महसूस किया जैसे उसे गिरफ़्तार कर लिया गया है। अब वह उसके सामने यूं खड़ा था, जैसे किसी सज़ा के लिए प्रस्तुत हो। लेकिन सज़ा किस बात की ?

कल शाम उनके साथ बैठे-बैठे अचानक बेकाबू-सा होकर उसने, उसके पति के सामने, लेकिन उसके अस्तित्व से इन्कार करते हुए कहा था—'सुनो, मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ, इसी वक्त।' वह खामोश देखती रही थी, अपने पति की ओर नहीं। कुछ क्षण उसके होंठ फड़फड़ाते रहे थे, लेकिन वह कुछ कह नहीं पा रहा था। फिर उसके पति की भयानक हँसी की आवाज़ उस तक पहुँची थी। वह कह रहा था, 'कहो न। डरो मत। यही समझो कि तुम अकेले हो। मैं तो यूं भी इस वक्त होश में नहीं। कहो, ज़रूर कहो। मैं

अगर सुन भी लिया तो समझ नहीं पाऊँगा। इतनी देर के बाद मिले हो, कहने के लिए बहुत मवाद जमा हो गया होगा। डरो मत, मैं किसी बात का बुरा नहीं मानूँगा।'

उसके पति के खामोश होते ही उसने फिर कहा था, 'सुनो, मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ, इसी वक्त सुनोगी, सुनना चाहोगी ?'

वह संयत-सी उसकी ओर देखती रही थी। फिर उसका पति उठ खड़ा हुआ था—अच्छा तो मैं कुछ देर के लिए बाहर लॉन मे जा बैठता हूँ। मेरे सामने शायद तुम्हारी हिम्मत नही होगी।

और वह हँसता हुआ, झूलता हुआ, डाइनिंग हॉल से बाहर चला गया था।

उसने अपने आपको रोकने की कोशिश मे अपना गिलास खाली कर दिया था। लेकिन वह बदस्तूर उसकी ओर देख रही थी—स्थिर और खामोश।

कुछ देर तक वह न जाने क्या बोलता चला गया था, और वह उसकी ओर देखती रही थी, जैसे उसे रोकना भी चाहती हो और उसे सुन लेना भी चाहती हो, जैसे कह रही हो—सब जल्दी से कह डालो, समय बहुत कम है, मैं जानती हूँ कि बाद मे फिर कभी तुम कुछ नही कह सकोगे।

वह कुछ नहीं जानती, उसने उसके सामने खड़े हुए सोचा, नही तो इस तरह आजमाइश करने न चली आती। लेकिन आजमाइश किस बात की ?

न जाने कितनी देर फूटते रहने के बाद, आसपास बैठे लोगो का खयाल किये बगैर, अचानक बोलना बन्द करके उसने उठकर उसे अपनी बाँहों मे भींच लिया था, इतने जोर से कि उसकी चीख निकल गई थी। उसी समय शायद उसका पति वापस हॉल मे दाखिल हुआ था, या शायद वह कुछ देर पहले से उनके पास खड़ा उसे देख रहा था। उससे अलग होने के बाद के कुछ क्षण अभी तक स्याह थे। रात भर वह उन क्षणो को जिलाने की कोशिश करता रहा था। याद करने की कोशिश करता रहा था कि उस वक्त उसने

है, जिस पर उसका पति कल शाम पागल हो गया था।

उसके पति के पागलपन की याद से वह काँप उठा। रात भर उस याद से उसे जो आश्वासन मिलता रहा था, एकाएक उसका स्थान फिर एक असह्य ख़ौफ ने ले लिया।

मैं कुछ पूछूंगा नहीं। मैं कुछ भी पूछ नहीं सकता। मैं केवल इन्तज़ार कर सकता हूँ। लेकिन इन्तज़ार किस बात का ?

इस सवाल के साथ ही रात भर जिन चकाचौंध वगूलों ने उसे गरमाया-तड़पाया था, वे सब बुझ गए, और उसे महसूस हुआ जैसे वह अंधेरे में खड़ा रो रहा हो। उसे अपने आप पर बहुत दया हो आई। जैसे एकदम वह गिलगिला गया हो। उसकी ख्वाहिश हुई कि उससे मुआफ़ी माँग ले। लेकिन मुआफ़ी किस बात की ?

०

उसने आँख उठाकर उसकी ओर देखा। एक क्षण के लिए वह उसकी नज़र में तैर-सी गई। फिर सोई-सोई-सी कमरे के अन्दर बढ़ आई। बिस्तर पर बैठने से पहले उसने कहा, "दरवाज़ा बन्द कर दो।" वह कुछ देर दरवाज़े के पास खड़ा रहा, उसकी ओर पीठ किए हुए। उसकी ख्वाहिश हुई कि उसे वहीं छोड़कर कमरे से बाहर चला जाए। फिर उसने धीरे-से दरवाज़ा बन्द कर दिया और महसूस किया जैसे उसे गिरफ़्तार कर लिया गया हो, अब वह उसके सामने यूं खड़ा था, जैसे किसी सज़ा के लिए प्रस्तुत हो। लेकिन सज़ा किस बात की ?

कल शाम उनके साथ बैठे-बैठे अचानक बेकाबू-सा होकर उसने, उसके पति के सामने. लेकिन उसके अस्तित्व से इन्कार करते हुए कहा था—'सुनो, मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ, इसी वक्त।' वह ख़ामोश देखती रही थी, अपने पति की ओर नहीं। कुछ क्षण उसके होंठ फड़फड़ाते रहे थे, लेकिन वह कुछ कह नहीं पा रहा था। फिर उसके पति की भयानक हँसी की आवाज़ उस तक पहुँची थी। वह कह रहा था, 'कहो न। डरो मत। यही समझो कि तुम अकेले हो। मैं तो यूं भी इस वक्त होश में नहीं। कहो, ज़रूर कहो। मैंने

गर सुन भी लिया तो समझ नहीं पाऊँगा। इतनी देर के बाद मिले हो, हने के लिए बहुत मवाद जमा हो गया होगा। डरो मत, मैं किसी बात का रा नहीं मानूंगा।'

उसके पति के खामोश होते ही उसने फिर कहा था, 'सुनो, मैं तुमसे छ कहना चाहता हूँ, इसी वक़्त सुनोगी, सुनना चाहोगी ?'

वह सयत-सी उसकी ओर देखती रही थी। फिर उसका पति उठ खड़ा आ था—अच्छा तो मैं कुछ देर के लिए बाहर लॉन में जा बैठता हूँ। मेरे ामने शायद तुम्हारी हिम्मत नहीं होगी।

और वह हँसता हुआ, झूलता हुआ, डाइनिंग हॉल से बाहर चला या था।

उसने अपने आपको रोकने की कोशिश में अपना गिलास खाली कर दिया था। लेकिन वह बदस्तूर उसकी ओर देख रही थी—स्थिर और ामोश।

कुछ देर तक वह न जाने क्या बोलता चला गया था, और वह उसकी ोर देखती रही थी, जैसे उसे रोकना भी चाहती हो और उसे सुन लेना भी ाहती हो, जैसे कह रही हो—सब जल्दी से कह डालो, समय बहुत कम है, ैं जानती हूँ कि बाद में फिर कभी तुम कुछ नहीं कह सकोगे।

वह कुछ नहीं जानती, उसने उसके सामने खड़े हुए सोचा, नहीं तो स तरह आजमाइश करने न चली आती। लेकिन आजमाइश किस ात की ?

न जाने कितनी देर फूटते रहने के बाद, आसपास बैठे लोगों का खयाल किये बगैर, अचानक बोलना बन्द करके उसने उठकर उसे अपनी बाँहों में भींच लिया था, इतने ज़ोर से कि उसकी चीख निकल गई थी। उसी समय शायद उसका पति वापस हॉल में दाखिल हुआ था, या शायद वह कुछ देर पहले से उनके पास खड़ा उसे देख रहा था। उससे अलग होने के बाद के कुछ क्षण अभी तक स्याह थे। रात भर वह उन क्षणों को जिलाने की कोशिश करता रहा था। याद करने की कोशिश करता रहा था कि उस वक़्त उसने

अपने पति की ओर किस नज़र से देखा होगा, उससे क्या कहा होगा, अगर कुछ कहा होगा तो ? फिर उसने देखा कि वे तीनों वाहर लॉन में खड़े थे, और उसका पति कह रहा था, 'आज रात शायद मैं इसे जान से मार डालूं। अगर तुम इसे वचाना चाहते हो तो······।'

उसकी ख्वाहिश हुई कि साफ-साफ एक कोरी आवाज में उससे पूछ ले कि वह क्या करने आई है ? सहानुभूति वटोरने ? सफाई तलव करने ? अपने पति के खिलाफ शिकायत करने ? वह सव सुनने, जो कल शाम मैं उससे नहीं कह सका ?

फिर वह यह सोचकर खामोश रहा, जव तक मैं कुछ पूछता नहीं, आने का दायित्व उसी पर रहेगा।

इस निश्चय के वाद खड़े रह सकना उसके लिए असम्भव हो गया। वह विस्तर के पास पड़ी आराम कुर्सी में गिर-वैठ गया और उसकी ओर देखने लगा, जैसे कह रहा हो, मैं कुछ नहीं पूछूंगा, मैंने फैसला कर लिया है।

* * *

उसने देखा कि उसकी आँखों में वे तमाम सवाल झलक रहे थे, जो उसने अपने मन में दुहराए थे। उसने देखा कि वह वहुत खूवसूरत थी, और उसकी गर्दन पर खराशें खिची हुई थीं। एक लम्वी खामोशी के वाद उसने सुना, "मैं तुमसे अपने पति की ओर से मुआफी माँगने आई हूँ। मैं चाहती हूँ कि कल शाम की वात से तुम दोनों की दोस्ती में कोई फर्क न पड़े। वह वहुत शर्मिन्दा है कि जरा-सी वात पर उसने तुम्हारा इतना निरादर कर दिया।"

पेश्तर इसके कि वह अपने आपको रोक पाता, उसने अपने आपको कहते हुए सुना, "मैं खुद वहुत शर्मिन्दा हूं, अपनी हरकत पर। मुआफी तो मुझे माँगनी चाहिए थी।"

वह उठकर धीरे-धीरे दरवाजे की ओर चल दी, खोई-खोई-सी।

दरवाजा खोलकर वह एक क्षण के लिए दहलीज पर रुक गई, लेकिन फिर उसकी तरफ देखे वग़ैर कमरे से वाहर निकल गई।

सिगार ठीक करते हुए, वह सोच रहा था—लेकिन जो वह सोच रहा था, उसकी कोई अहमियत नहीं। सारे अनुभव की एकमात्र उपलब्धि वह एक मुस्कराहट थी, जिसको घुमा कर अपने होंठों में समेट रहा था। उसमें दर्द था तो, लेकिन हारे हुए आदमी का दर्द बहुत निर्विरोध होता है, जैसे कोई मरी हुई तितली हो।

● ●

भगवान् के नाम सिफ़ारिशी चिट्ठियाँ

परलोक रवाना होने से दो रोज़ पहले उन्हें खयाल आया कि अपनी और भगवान् की जान-पहचान की चन्द चीदा हस्तियों से भगवान् के नाम कुछ सिफ़ारिशी चिट्ठियाँ ले लेनी चाहिएँ। बीमारी और बुढ़ापे के कारण उनका शरीर सूखकर माचिस की तीली के मानिन्द हो चुका था, लेकिन इस खयाल के आते ही न जाने कैसे वह एकाएक बिस्तर से उठ खड़े हुए। कुछ क्षण शीश नवाए खड़े रहे, फिर वहीं से उन्होंने शोफ़र को आवाज़ लगाई और सोचा, हर शुभ काम में भगवान् खुद सहायक होते हैं, भी तो—हे भगवान्, तू धन्य है !

उन्हें गाड़ी की तरफ़ लपकते देख परिवार के लोग और नौकर-चाकर खुश कम हुए और हैरान ज़्यादा। उनमें से कुछेक—जैसे कि उनके बड़े लड़के की बीवी—मायूस भी बहुत हुए, क्योंकि डॉक्टर ने तो साफ़ कह रखा था कि अब वह मरते दम तक बिस्तर से उठ नहीं पाएँगे और वह दिन भी ज़्यादा दूर नहीं। भगवानदास उस सदा की परेशानी की परवाह किए बग़ैर गाड़ी में बैठ गए, कि फ़िज़ूल बातों के लिए उनके पास वक्त नहीं था।

सबसे पहले वह अपने डॉक्टर के दवाखाने पर रुके। डॉक्टर उन्हें देख-

कर खड़ा हो गया और वह एक सोफे में गिर पड़े। एक क्षण के लिए डॉक्टर ने यही सोचा कि हो-न-हो उनका मरीज़ दूसरी दुनिया से वापस भाग आया है। फिर कुछ सँभलकर वह बोला—आप···यहाँ···कैसे ?

भगवानदास बोले—बात ही कुछ ऐसी थी, वहाँ एकान्त नहीं मिल पाता, और न ही मेरे पास ज़्यादा वक़्त था, नहीं तो पहले आपको इत्तला करवा दी होती।

डॉक्टर ने पूछा—लेकिन··· ?

भगवानदास बोले—आप घबराइए नहीं, मैं ज़िन्दा हूँ, लेकिन आप तो जानते ही हैं कि अब ज़्यादा देर नहीं रह सकूँगा। यहाँ मेरा बड़ा रसूख़ था, सभी लोग मेरी बात मानते थे, बड़ी-बड़ी जगहों तक मेरी पहुँच थी, किसी से कोई भी काम करवा सकता था, जायज़ और नाजायज़। आपको तो मालूम ही है, आपके भानजे को भी नौकरी मैंने ही दिलवाई थी, कहिए अब वह कैसा है ?

भगवानदास को महसूस हुआ कि भानजे की बात गलत मौके पर उठ खड़ी हुई। लेकिन डॉक्टर भौंचक्का-सा उनकी ओर देख रहा था—वह आख़िर कहना क्या चाहते हैं ?

—और अब उधर जाने से पहले मैं चाहता हूँ कि भगवान् और उसके ऊँचे कर्मचारियों के नाम कुछेक चिट्ठियाँ लेता जाऊँ, ताकि वहाँ भी अपना सिक्का उसी तरह जम जाए जिस तरह उसकी कृपा से यहाँ जम चुका था। एक चिट्ठी मैं आपसे भी लेना चाहता हूँ, और उसे लिखने में आपका जो क़ीमती वक़्त बरबाद होगा, उसकी क़ीमत मैं अदा कर दूँगा।

कहते-कहते भगवानदास ने चेकबुक निकाल ली।

—लेकिन, हुज़ूर, मेरा तो भगवान् से कोई वास्ता नहीं रहा अभी तक। मैं तो डॉक्टर हूँ, और भगवान् अगर हैं तो मुझसे तो वह नाराज़ ही रहते होंगे, कि मेरी वजह से शायद कुछ लोगों का विश्वास उन पर कम होता रहा हो···।

यह सुनकर पहले तो भगवानदास कुछ चकराए। इस पक्ष पर तो

उन्होंने जल्दी में सोचा ही नहीं था। कुछ देर सोचकर चीदा-चीदा लोगों की फ़हरिस्त बना लेनी चाहिए थी। फिर वह मुस्कराते हुए बोले—आप बड़े नामी डॉक्टर हैं, बड़े-बड़े लोग आपके हाथों से गुज़र चुके हैं, आपकी शोहरत वहाँ तक भी ज़रूर जा पहुँची होगी। आप भगवान् को मानें न मानें, वह तो आपको मानते ही होंगे, क्योंकि वह बड़े उदार हैं। और फिर आप सदाचार समिति के मालिकों में से एक हैं। सुनिये, आप एक चिट्ठी लिख ही दीजिए। वहाँ पहुँचकर मैं हालत देखकर अगर मुनासिब हुआ तो उसका इस्तेमाल करूँगा, नहीं तो फाड़ डालूँगा।

डॉक्टर लम्बी बहस में नहीं पड़ना चाहता था। तेज़ दिमाग़ का आदमी था। उसने सोचा, चलो मेरा क्या बिगड़ता है। और फिर भगवान् की हस्ती से दबे-दबे मुनकिर होने के बावजूद उसके नाम चिट्ठी देने के विचार से उसे एक अपरिचित उत्तेजना का अनुभव तो हो ही रहा था। वैसे भी अगर भगवान् हुआ तो कम-से-कम उससे राब्ता गाँठने का यह मौक़ा तो नहीं निकल जाएगा, और शायद आमदनी और रसूख़ का यह नया रास्ता खुल जाए। डॉक्टर ने उसी वक़्त एक ज़ोरदार चिट्ठी लिख डाली, जिसमें उसने भगवानदास के एक आदर्श मरीज़ होने का ज़िक्र किया, उनकी तमाम बीमारियों के ऐसे मुश्किल-मुश्किल नाम गिनवाए कि ख़ुद भगवान् चक्कर में पड़ जाएँ, और सिफ़ारिश की कि उन्हें वहाँ किसी क़िस्म की कोई तकलीफ़ नहीं होनी चाहिए, क्योंकि सारी ज़िन्दगी उन्होंने बड़े ऐश-ओ-आराम में बिताई, और भगवान् पर उन्हें बहुत भरोसा है।

भगवानदास चिट्ठी सँभालकर उठ खड़े हुए।

—अब आप किधर जाएँगे ?

—हनुमान मन्दिर। वहीं बैठे-बैठे उन्होंने फ़ैसला कर लिया था।

डॉक्टर मुस्कराया—कमाल का आदमी है !

हनुमान मन्दिर का पुजारी उस समय अपनी एक दासी से ख़ालिस घी की मालिश करवा रहा था, और उसे हनुमान-चालीसा सुना रहा था। उन्हें देखते ही उसने दासी से कहा—अब तुम जाकर मेरा नाम जपो। जब

वह चली गई तो भगवानदास ने जेब से एक हज़ार का एक नोट निकालकर पुजारी के चरणों में रख दिया और बोले—पुजारीजी, मेरा नाम भगवानदास है।

पुजारी भूखी निगाहों मे नोट की तरफ देखता हुआ बोला—बहुत सुन्दर नोट—यानी नाम है। कहिए, स्वस्थ तो हैं ? क्या कामना है ?

—पुजारीजी, मैं अब जल्द ही भगवान् के पास जा रहा हूँ, और मैं चाहता हूँ कि उनके नाम आप मुझे एक चिट्ठी लिख दें, क्योंकि वहाँ आपकी बहुत पहुँच होगी।

पुजारी मुस्कराया और बोला—सेठजी, यह काम इतना आसान नही जितना आप समझते हैं। भगवान् के कामो मे हम दख़ल देने से बहुत घबराते हैं। दरअसल उनसे हमारा इकरारनामा है कि वह हमारे कामो मे टाँग न अड़ाएँ और हम उन्हे तंग न करें। हाँ, कोई ख़ास बात हो तो बात दूसरी है, लेकिन आम पॉलिसी यही है।

भगवानदास अनुभवी आदमी थे, इशारा समझ गए, और उन्होंने सौ का एक नोट निकाला और पुजारीजी के चरणो मे रख दिया। पुजारी अब भी मुस्करा रहा था और उसकी देह घी से चमक रही थी।

भगवानदास ने एक नोट और निकाल लिया। पुजारी ने अब भी ग्रीवा नही उठाई। और इस तरह होते-हवाते फ़ैसला दो हज़ार पर हुआ। लेकिन अब मुश्किल यह पेश आई कि पुजारीजी लिखना नही जानते थे और न ही यह बताना चाहते थे। लेकिन आदमी समझदार थे, घबराए नही, बोले—ठहरिए, मैं अभी आता हूँ।

कुछ देर बाद एक मैला-सा कागज़ लिए बाहर आए और उसे भगवानदास के हाथ मे देते हुए बोले—यह भाषा आप नही जानते, लेकिन भगवान् इसे पढ़ लेंगे।

कागज़ पर कुछ टेढ़ी-तिरछी लकीरें खिंची थीं, जैसे शार्टहैण्ड हो। भगवानदास को सोच में पड़ा देख पुजारी बोला—देखिए, भगवान् से हमारा पत्र-व्यवहार इसी प्राइवेट भाषा मे होता है, वैसे जो हमने लिखा है उसका

ख़ुलासा यह है कि आप हनुमान के अनन्य भगत थे, हर मंगलवार को एक सौ रुपए का प्रसाद चढ़ाते थे और हनुमान जयन्ती के अवसर पर मूर्ति को खरे घी के साथ अपने हाथों से चुपड़ते थे, ऐसे श्रद्धालु व्यक्ति इस दुनिया में कम ही मिलेंगे, इसलिए आपसे मेरा अनुरोध है कि आप अपने इस दास का खास ख़याल रखें और इन्हें वहाँ किसी किस्म का कोई कष्ट न होने दें। बल्कि मैंने तो यहाँ तक लिख दिया है कि इन्हें आप एक बार फिर किसी ऊँचे घराने में अपना बोलबाला करने का एक अवसर और दें। साथ ही यहाँ का समाचार देते हुए लिखा है कि सब ठीक-ठाक है, आपके भगतों की संख्या बढ़ रही है, हालाँकि हमारी सरकार परिवार-नियोजन की नित-नई स्कीमें बनाती चली जा रही है, फिर भी हमारे इस मन्दिर में पुत्र-अभिलाषियों की भीड़ लगी रहती है और मुझे दम मारने की फ़ुरसत नहीं। और मेरे लायक कोई सेवा हो तो ज़रूर लिखें। हनुमानजी का क्या हालचाल है, उन्हें मेरी ओर से कहें कि कभी-कभी किसी बन्दर के भेष में ही सही, आ जाया करें, भगतजन बहुत ख़ुश हो जाएँगे।

भगवानदास को महसूस हुआ कि पुजारी ने चिट्ठी में इधर-उधर की बातें कुछ ज्यादा ही लिख डाली हैं, फिर भी यह सोचकर वह आश्वस्त हुए कि पुजारी और भगवान् के सम्बन्ध बहुत दोस्ताना क़िस्म के दिखाई देते हैं, और शायद भगवान् उसकी बात मानकर उन्हें एक बार फिर इस संसार में भेज देने पर राज़ी हो जाएँ। अबकी बार वह ज्यादा अच्छे खानदान में पैद नहीं हुए थे, यह तो उनकी अपनी हिम्मत का ही फल था कि उन्होंने इतन नाम और धन कमा लिया था। अगली बार अगर भगवान् की कृपा हु तो···। सोचते-सोचते भगवानदास सरूर में आ गए और बोले—अच्छा त पुजारीजी, अब आज्ञा दीजिए, शायद फिर मुलाक़ात हो। पुजारीजी बोले क्यों नहीं, क्यों नहीं, भगवान् हमारी बात टाल सकते हैं भला !

भगवान्दास चलने लगे तो पुजारीजी ने उनके कान में कहा—सुनि कहीं आप ऊपर जाकर उन्हें यह न कह दीजिएगा कि हम किसी से मालि करवा रहे थे।

इस पर भगवानदास बहुत हँसे और फिर आँख मारकर बोले—अजी पुजारीजी, हम भगवान् से ऐसी-वैसी बात नही करेंगे, आप निश्चिन्त रहें ।

फिर भी उनका मुंह बन्द कर देने के खयाल से पुजारीजी ने उसी वक्त दासी को बुलाया और कहा—बेटी, यह बहुत बड़े आदमी हैं, इनके चरण छुओ।

दासी ने बड़े प्यार से न सिर्फ उनके चरण छू दिए बल्कि धीरे से उनकी टाँगों को भी सहला दिया, और भगवानदास लडखडाते हुए कार मे जा बैठे।

शोफर ने पूछा—अब कहाँ चलिएगा साहब ?

भगवानदास बोले—अमीर बाई के यहाँ ।

शोफ़र को अपने कानो पर यकीन न आया। लेकिन भगवानदास के खँखारने पर उसने गाडी स्टार्ट कर दी।

अमीर बाई उस समय नंगी नाच रही थी, अकेली । भगवानदास को इतने दिनों बाद देखकर और झूम उठी, और भगवानदास ने एक बडा नोट अपने होठों पर रखकर उसे अपना बोसा लेने पर मजबूर कर दिया। फिर उसे अपनी बगल मे बिठाकर उसके सीने को सहलाते हुए बोले—अब हम जा रहे हैं, अमीर बाई ! अमीर बाई उनका इशारा समझ गई और उसने उनकी जेब में हाथ डाल लिया। भगवानदास ने उसे रोका नही, क्योंकि वह जानते थे कि जेब मे ज्यादा रकम बाकी नहीं रही थी। लेकिन अमीर बाई का स्पर्श पाते ही वह करीब-करीब भूल गए थे कि वह कहाँ जा रहे हैं। जेब खाली कर लेने के बाद अमीर बाई ने एक गाउन पहन लिया और बोली—सेठजी, आपको देर तो नही हो रही। भगवानदास सुनकर होशियार हुए और बोले—हमने सोचा, चलते समय एक बार तुमसे मिलते चलें, और वैसे एक काम भी था, अगर कर सको तो ?

फिर उन्होंने सिफारिशी चिट्ठी की बात चलाई और कहा—अमीर बाई सुना गया है कि भगवान् को दुखियों से बहुत प्यार है। हम जानते हैं कि तुमने इस दुनिया में बहुत दु:ख सहे हैं, बेशक ऊपर से तुम नाचती-गाती रही हो। तो ऐसा करो कि एक छोटी-सी चिट्ठी हमें लिख दो, शायद काम आ जाए।

दरअसल जब भगवानदास ने दासी के हाथों अपनी टाँगों को लड़खड़ा महसूस किया तभी उन्हें अमीर बाई की याद हो आई थी। लेकिन उस वक़ उन्होंने यह नहीं सोचा था कि वह उससे भी एक चिट्ठी माँगेंगे। लेकिन अ उन्हें ख़याल आया—हर्ज़ भी क्या है, अब आए हैं तो लेते चलें। भगवा का क्या भरोसा, उन पर किसी भी बात का असर पड़ सकता है।

अमीर बाई रियाज़ करते-करते थक चुकी थी और जल्द-अज़-ज भगवानदास से पीछा छुड़ाना चाहती थी। सो उसने दो जुमले लिख चिट्ठी भगवानदास के हवाले कर दी, और सीधी गुसलख़ाने में चली गई। भगवानदास ने वे जुमले पढ़े तो तड़प उठे। अमीर बाई ने लिखा था— भोले भगवान्, सेठ भगवानदास को नाच-गाने का बहुत शौक़ है, इनका य शौक़ वहाँ भी पूरा होना चाहिए, नहीं तो वह आपको चैन से नहीं बैठ देगा। आपकी मीरा बाई उर्फ़ अमीर बाई।

वहाँ से चलकर भगवानदास चाणक्यपुरी पहुँचे। एहतियातन ए चिट्ठी वह किसी विदेशी राजदूत से भी ले लेना चाहते थे। क्या मालू भगवान् आजकल किस मूड में हों, कहीं हिन्दुस्तानियों से चिढ़े हुए न हों हर रोज़ ये कम्बख़्त किसी-न-किसी बहाने लाखों की तादाद में मरते र हैं, जिससे न सिर्फ़ भगवान् का नाम बदनाम हो रहा है, बल्कि वहाँ इन्तजाम भी खराब हो रहा है। बहुत सोचने के बाद भगवानदास ने गा अमरीकी दूतावास के सामने रुकवाई। ज़रूर अमरीकियों का वहाँ भी ब रोबदाब होगा।

भगवानदास ने राजदूत से कहा—बन्दापरवर, आप जानते ही हैं जब तक मैं यहाँ रहा, आप ही के गुण गाता रहा, और आपको यक़ीन हो चाहिए कि वहाँ जाकर भी आप ही के गीत गाऊँगा।

राजदूत बोले—मैं आपकी बात समझा नहीं।

भगवानदास बोले—हुज़ूर, मैं इस दुनिया को छोड़कर उस दुनिया जा रहा हूँ।

—तो क्या रास्ते में अमरीका रुकने का इरादा है ? विज़ा चाहिए !

—जी नहीं, मुझे गॉड के नाम एक सिफ़ारिशी चिट्ठी चाहिए। अगर ॉड के नाम न देना चाहें तो जीसस के नाम ही दे दें, काफ़ी रहेगा। और गर वह भी न हो तो शैतान के नाम ही सही।

—क्या बक रहे हैं आप! शैतान को तो सदियों पहले वहाँ से निकाल या गया था।

—ग़लती मुआफ़ कीजिए। बीमारी के कारण मेरी याददाश्त बहुत मज़ोर पड़ गई है।

राजदूत मुस्कराए। उन्होंने दिल में सोचा, ये हिन्दुस्तानी भी अजीब रफिरे होते हैं। लेकिन ऊपर से बोले—वैसे आज से पहले कभी किसी ने सी माँग हमसे की नहीं। लेकिन लिख देता हूँ।

उन्होंने लिखा—मिस्टर भगवानदास इस देश के कामयाब सरमाया-ारों में से एक हैं। हमें उनका सहयोग बराबर मिलता रहा है। सारी उम्र ह आपके विरोधियों के खिलाफ़ लड़ते रहे। कई बार इस लड़ाई में उन्होंने पनी मिलों के मज़दूरों पर गोली तक चलवाई। स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए उन्होंने लाखों रुपए स्वतन्त्रता पार्टी को दिए और अब वह आपके पास हुँच रहे हैं। मैं अमरीकी सरकार की ओर से अनुरोध करना चाहूँगा कि आप भी उन्हें अपना खास आदमी समझें, और हर किस्म की खुफ़िया कार्यवाही उन्हीं के हाथों में सौंप दें, क्योंकि ये हाथ आज़माए हुए हैं। और सब मज़े से चल रहा है। वियतनाम में हमारी कुछ सहायता कीजिए, नहीं तो सारा इलाका आपके दुश्मनों के पास चला जाएगा। माना कि आपका कोई दुश्मन नहीं, फिर भी अपना अपना ही होता है, और ग़ैर ग़ैर। ओ० के०।

चलते समय भगवानदास ने राजदूत से कहा—सुनिए, सर, अगर किसी तरह मैंने भगवान् को अपने काबू में कर लिया तो उनके सारे राज आपको भेज देने का पक्का वायदा करता हूँ। बस आप किसी तरह मेरे साथ सम्पर्क बनाए रखें, कोई रॉकेट-पॉकेट ऐसा निकालें जिसके ज़रिए मैं अपनी बात आप तक पहुँचा सकूँ। वैसे उम्मीद है कि मैं खुद भी वहाँ से लौटकर एक

बड़े घराने में जन्म लूँगा, क्योंकि हनुमान मन्दिर के पुजारी ने अपनी चिट्ठी में भगवान् को यही लिखा है।

राजदूत ने महसूस किया कि यह कम्बख़्त शायद खुशी के मारे पागल हुआ जा रहा है। बोले—अब आप ज़्यादा देर न कीजिए, वहाँ आपका इन्तज़ार हो रहा होगा। मैं अभी वहाँ टेलिफ़ोन भी करवा दूंगा।

भगवानदास इससे बहुत प्रभावित हुए। ये साले अमरीकन भी कमाल के आदमी हैं, उन्होंने दिल-ही-दिल में सोचा और लड़खड़ाते-झूमते बाहर आ गए।

कार में बैठते ही उन्होंने शोफ़र को वापस बंगले पर चलने को कहा। उन्हें कुछ थकन महसूस हो रही थी, और वैसे भी चिट्ठियाँ काफ़ी हो चुकी थीं। सिर्फ़ एक चिट्ठी वह और लेना चाहते थे, अपने माली रामआसरे से, क्योंकि उन्हें न जाने कैसे वहम हो गया था कि रामआसरे की भगवान् के यहाँ बहुत चलती होगी।

रामआसरे उस समय भाँग पी रहा था, उन्हें अपने झोंपड़े में देखकर हँसने लगा। भगवानदास ने गरजकर कहा—हँसो मत, रामआसरे, यह मेरी मौत का सवाल है। लेकिन रामआसरे मस्त था और हँसे जा रहा था। भगवानदास बोले—अरे भई रामआसरे, हम जल्द ही भगवान् के पास जा रहे हैं, अगर कोई सन्देश देना हो तो दे दो। उन्होंने सोचा, यह साला मारे शायद उन्हें अपने झोंपड़े में देखकर पागल हो गया है, या शायद उनका मतलब समझकर अकड़ गया है।

लेकिन रामआसरे कोई सन्देश देने के बजाय हँसे जा रहा था, और भगवानदास को शक होने लगा, हो न हो रामआसरे उनसे कोई पुराना बदला चुका रहा है। इतने में रामआसरे की बीवी रधिया भी वहाँ आ पहुँची। उसे देखते ही भगवानदास काँप उठे। एक-दो बार वह उस पर हाथ साफ़ कर चुके थे, और वह सहमी हुई रामआसरे की बग़ल में खड़ी थी। भगवानदास को न जाने क्या हुआ, हाथ जोड़कर बोले—रधिया बहन, मैं अब इस संसार को छोड़कर जा रहा हूँ, कोई ग़लती मुझसे हुई हो तो मुआफ़

करता। और फिर उन्होंने कुछ रुपये—जो एक खुफिया जेब में होने के कारण अमीर बाई के हाथ नहीं लग सके थे—निकालकर रधिया की हथेली पर रख दिए। रधिया रुपए देखकर सब-कुछ भूल गई और बोली—मालिक, भगवान् आपको बनाए रखे। यह सुनकर भगवानदास खुश हुए और बोले—दरअसल मैं आया तो था कि जाने से पहले तुम दोनों से भगवान् के नाम कोई सिफारिशी चिट्ठी या सन्देश लेता जाऊँ लेकिन इस साले की हँसी ही खत्म नहीं होती।

रधिया ने कहा—मालिक, यह इस समय भाँग पिए हुए है। आप चिट्ठी में जो चाहे लिख लें, मैं इसका अँगूठा पकड़कर लगा दूँगी।

भगवानदास रधिया का गाल थपथपाकर बाहर निकल आए। अपने कमरे में पहुँचकर उन्होंने सेक्रेटरी से एक चिट्ठी लिखवाई और अँगूठा लगवाने के लिए उसे रामआसरे की झोंपड़ी में भेज दिया।

उसके तीसरे रोज़ भगवानदास ने खुशी-खुशी प्राण त्याग दिए।

सभी ने एक-दूसरे से कहा—कितनी शान्ति है इनके चेहरे पर! भगवान् के भक्त थे। जैसा नाम था, वैसे ही आप थे। लाखों रुपए दान में दे गए। मरने से दो रोज़ पहले कार लेकर शहर-भर के मन्दिरों में हो आए। न जाने इनमें इतनी ताक़त कहाँ से आ गई थी। डॉक्टर भी हैरान है। किसी ने सच ही कहा है—जिसको राखे साइयाँ मार सके न कोय।

●

जब भगवानदास भगवान् के पास वे पाँच चिट्ठियाँ लेकर पहुँचे तो उनकी हैरानी का कोई ठिकाना न रहा क्योंकि वह कम्बख्त रामआसरे वहाँ खड़ा उसी तरह हँस रहा था, जिस तरह दो रोज़ पहले अपनी झोपड़ी में। भगवानदास ने मौके की नज़ाकत को उसी दम पहचान लिया, आखिर अनुभवी आदमी थे। भगवान् को आँख मारते हुए बोले—प्रभु, इसने भाँग पी रखी है, इसे यहाँ से निकाल दिया जाए, मैं आपके नाम कुछ ज़रूरी चिट्ठियाँ लाया हूँ।

भगवान् अपने दास के झाँसे में आ गए। रामआसरे को उसी वक़्त बाहर धकेल दिया गया और भगवानदास की लाई हुई चिट्ठियाँ पढ़कर भगवान् को सुनाई गईं। भगवान् ने उठकर भगवानदास को गले लगा लिया और भगवानदास की आँखों में मोटे-मोटे और गर्म-गर्म आँसू भर आए।

अगर मैं आज

देसराज एक ढीली-ढाली चारपाई पर बैठे बच्चे की पीठ पर हाथ फेर रहे थे, कुछ ऐसे खोए-डूबे अन्दाज में, जैसे किसी बहुत गहरी सोच में गर्क हों। बच्चा पाँच-छै दिनों से बीमार था, आँख तक नहीं झपकाता था, न हूँ करता, न हाँ, कुछ खाता था न पीता, दवाई तक हज्म नहीं हो सकती थी। देसराज रात भर जागते रहे थे, क्योंकि बच्चा मिनट-मिनट बाद काँप उठता, जैसे कोई भयानक स्वप्न देख रहा हो। और देसराज कभी उसे अपनी छाती से चिपटा लेते और कभी मुंह चूम लेते।

कौशल्या भी उठकर चार-पाँच बार अन्दर आई थी। लेकिन देसराज ने हर बार उसे यह कहकर वापिस भेज दिया था कि चिन्ता मत करो, बच्चा ठीक है, जाकर सो जाओ। उसे खुद दिन भर कमर में दर्द होता रहा था, फिर भी घर का सारा काम-काज तो करना ही था, इसलिए रात को दर्द बहुत तेज हो गया था। उसे यह दर्द उस समय से था, जब उसका पहला बच्चा हुआ जो अब आठ वर्ष का था। शायद कुछ बदपरहेजी हो गई थी, या शायद उसे उचित खुराक नहीं मिली थी, क्योंकि उन दिनों देसराज बेकार थे। अब हर दूसरे-तीसरे महीने अचानक यह दर्द कौशल्या

को आन जकड़ता और कई वार तो इस प्रकार कि वह हिलने-डुलने से भी रह जाती ।

लेकिन देसराज की वृद्धा माँ कहतीं कि कौशल्या वहाने करती है, मकर-फरेब की पुतली है, दर्द-वर्द कुछ भी नहीं, सिर्फ नखरे हैं। वह तो यहाँ तक कह देतीं कि एक जोर की लात लग जाए उसकी कमर में, तो सारा दर्द एकदम ठीक हो जाए । देसराज कभी-कभी माँ की वातों में आ जाते । जव कौशल्या दर्द से कराह रही होती, तो उनकी तीव्र इच्छा होती कि माँ के बताए हुए नुस्खे का प्रयोग करें और एक भरपूर लात जमाकर कौशल्या के दर्द को ठीक कर दें ।

एक बार उन्होंने ऐसा किया भी था, लेकिन दर्द ठीक होने की वजाय कौशल्या की रीढ़ की हड्डी टूटते-टूटते बची थी और वह हफ़्ता भर विस्तर पर पड़ी रही थी । माँ तो फिर भी अपने विश्वास पर अड़ी रहीं और उसी तरह ही कहती रही थीं कि यों ही शोर मचा रही है। वात कुछ भी नहीं। ऐसी चुड़ैल से तो परमात्मा वचाए। लेकिन देसराज उस घटना के वाद सँभल गए थे और जव कभी कौशल्या की कमर दर्द में जकड़ जाती और उनके दिल में लात लगाने की इच्छा होती, तो वह यह सोचकर इरादा वदल लेते कि कहीं कौशल्या की कमर टूट गई या कुछ और हो गया तो वह क्या करेंगे, छोटे-छोटे वच्चों को कैसे सँभालेंगे ?

माँ कौशल्या के दर्द को झूठा शायद इसलिए सावित करना चाहती थीं, क्योंकि स्वयं कई प्रकार की वीमारियाँ लगी हुई थीं, जिनका इलाज करवाने के लिए वह जरूरी समझती थीं कि वह यह सावित करती रहें कि घर में किसी दूसरे को कोई रोग नहीं । देसराज समझते थे कि माँ को सिवाय बुढ़ापे के कोई रोग नहीं, जिसका उनके पास और कोई इलाज नहीं था, क्योंकि माँ अपने रोगों को दूर करने के लिए दवाई-दारू की माँग कम करती थीं और अच्छी खुराक की ज्यादा। दवाई तो अच्छी-वुरी सरकारी अस्पताल से मिल जाती, लेकिन अच्छी खुराक की कोई सरकारी दुकान नहीं थी। इसलिए देसराज प्रायः माँ की वातों पर कान नहीं धरते थे।

लेकिन अपने बाप के बारे में देसराज बहुत परेशान रहते। वह दमे के ीज थे, वर्षों से थे। लेकिन कुछ देर से उनका स्वास्थ्य बहुत गिरता ा जा रहा था। इसलिए देसराज कई बार सोचते कि बन पड़े, तो उनका ाज करवाएँ। सरकारी अस्पताल की दवाई से कुछ फायदा नहीं होता , क्योंकि वहाँ तो सब बोतलें रंग-बिरंगे पानियों से भरी रहती थीं। देस- ज चाहते थे, किसी अच्छे डाक्टर से उनके लिए दवाई लाएँ और उसके थ-साथ उन्हें बाकायदा दूध, मक्खन, फल इत्यादि खिलाएँ, ताकि रोग ा दबाव कुछ कम हो।

देसराज के पिता समझदार थे। जानते थे कि यह सब-कुछ तो शायद ब भी सम्भव न होता अगर देसराज कोई बहुत बड़े अफसर होते और यह ो थे एक प्राइवेट फर्म में एक मामूली क्लर्क। सौ-सवा सौ में तो घर का नून- ल ही कठिनता से चलता था। अगर किसी सरकारी दफ्तर में ही होते, तो म-से-कम दवाई आदि का खर्च तो सरकार से मिल ही जाता। किराए की बचत हो जाती। शायद ऊपर से भी कुछ आमदनी हो जाती। देसराज के पिता विश्वास रखते थे कि सरकारी दफ्तरों में लगे सब लोगों को तनखाह के अतिरिक्त ऊपर से कुछ-न-कुछ टपकता रहता है। उन्हें देसराज से आन्तरिक सहानुभूति थी। न तो वह यह कहते कि कौशल्या बहाने करती है और न वह यह समझते कि देसराज की माँ को कोई विशेष रोग है। अपनी तक- ीफ को भी जहाँ तक होता छिपाने का प्रयत्न करते। लेकिन इधर कुछ िनों से उनके दौरे बहुत लम्बे और दुखदायक हो गए थे। फिर भी जब रा दर्द से होश आता, तो यही कहते—बेटा देस, तुम मेरी चिन्ता मत िया करो। अपना खयाल रखो। अपने बच्चों को ठीक ढंग से पालो-पोसो। हमारा क्या है? हमारा समय तो बीत गया।

उनकी मन्शा कुछ भी हो, देसराज पर इन बातों का प्रभाव उल्टा पड़ता। वह और भी दुखी हो जाते। सोचते, अन्तिम समय पिताजी उस पर धरम कर रहे हैं। बहुतेरे हाथ-पाँव मारते कि कहीं से कुछ और पैसे आ जाएँ, परन्तु उल्टा हर आए रोज फर्म का मालिक उन पर बरस पड़ता—

जाते थे। हाथ जोड़कर कहते—माँ, मुझे क्षमा करो। क्यों दुखी करती हो? जाओ, जाकर भगवान का नाम लो, तुम्हें समझ नहीं आती कि मैं कैसे··· और जब माँ अपनी आँखें पोंछने लगतीं, तो वह चुपके-से उठकर बाहर चले जाते। लेकिन आज वह मौन हो माँ की ओर देखते रहे और उसकी शिकायतें सुनते रहे। माँ आप-ही-आप चुप हो गईं और ठण्डी आहें भरती हुई कमरे से बाहर चली गईं। और देसराज यह सोचकर भी परेशान न हुए कि माँ किसी पड़ोसिन के पास जाकर जाने क्या-क्या कहेंगी।

—राम और काशी रोटी माँग रहे हैं। उठकर आटे का प्रबन्ध कीजिए और इस निगोटे को भी दिखलाइए किसी को। छै दिनों से पड़ा है।—कौशल्या कह रही थी।

लेकिन देसराज ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। टकर-टकर कौशल्या की तरफ देखते रहे और फिर देखते-ही-देखते मुस्कराने लगे। कौशल्या अपने पति की इस मुस्कराहट पर मन-ही-मन खीझ उठी। उसने एक कड़ी दृष्टि से देसराज की ओर देखा; लेकिन उन्हें मुस्कराता देख ठिठककर रह गई। कुछ कहना ही चाहती थी कि राम और काशी आँखें मलते-मलते अन्दर आए और फर्श पर लेटकर रोने लगे। कौशल्या उनके पास ही बैठ गई और हैरानी से देसराज की ओर देखने लगी, जो अब अधिक खुलकर मुस्करा रहे थे। उसे बहुत बुरा लगा। उसकी कमर मे दर्द की लहरें उठ रही हैं। राम और काशी रोटी माँग रहे हैं। बच्चा बीमार पड़ा है। घर में चुटकी-भर आटा नहीं है और यह मुस्करा रहे हैं···वह यह सोचकर चकरा-सी गई।

इतने में माँ देसराज के पिता को सहारा दिए कमरे में दाखिल हुईं। आते ही वह चारपाई पर गिर पड़े और जोर-जोर से हाँफने लगे। शायद उन्हें दौरा पड़ गया था। माँ फर्श पर बैठकर ऊँचे-ऊँचे स्वरों में रोने लग गईं।

देसराज अब भी मुस्करा रहे थे। कौशल्या एक क्षण के लिए अपना दर्द भूल गई। माँ ने एक नजर कौशल्या पर डाली। फिर उनकी नज़रों के साथ-साथ माँ की नजर भी देसराज के चेहरे पर जा गड़ी, जो यकायक

ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे थे। हँसी की आवाज़ सुनकर उनके पिता भी चौंक पड़े और अपनी उचटी आँखों से उनकी ओर देखने लगे।

राम और श्यामी अब भी चिल्ला रहे थे—हाय! भूख लगी है, हाय! रोटी!

कौशल्या सोच रही थी, इन्हें हँसी किस बात पर आ रही है? माँ सोच रही थी, कहीं लड़के पर जादू तो नहीं कर दिया किसी ने? बाप सोच रहा था, कहीं देसराज पागल तो नहीं हो गया? और देसराज सोच रहे थे अगर मैं आज मर जाऊँ तो···सोच रहे थे और हँस रहे थे।

● ●

भैंसें और भ्रान्तियाँ : एक अध्ययन

मेरे पड़ोस में कुछ भैंसें रहती हैं। मुझे यक़ीन है, आपके पड़ोस में भी कुछ-न-कुछ ज़रूर रहती होंगी। यह बात दूसरी है कि आपने कभी इस ओर ग़ौर न किया हो और फ़ी ज़माना ग़ौर करने पर ही बुरे और भले में, ज़मीन और आसमान में और गाय और भैंस में तमीज़ की जा सकती है। कुछ दानाओं का कहना है कि आजकल सब इन्सानी कदरें, और उनके साथ-ही-साथ सब इन्सानी नज़रें, धुंधला-सी गई हैं, चहुँ ओर घोर अँधेरा छाया हुआ है, जिसमें हाथ को हाथ, अर्थात्, भैंस को भैंस तक सुझाई नहीं देती। एक अजब समां है, अजीब विडम्बना है, एक ऐसी निस्तब्धता-सी छाई हुई है, जिसका चित्रण हिन्दी की कहानियों में बड़ी ख़ूबी से किया जाता है।

भैंसों के बारे में तरह-तरह की भ्रान्तियाँ प्रचलित हैं। मिसाल के तौर पर यह कि भैंसें काली-कलूटी और मोटी-मुटल्ली होती हैं। भैंसों के रंग की तुलना काले अक्षरों से और उनके मोटापे की तुलना अक़्ल से की जाती है। ये दोनों तुलनाएँ निराधार हैं। मेरी पड़ोसिन भैंसें काली-स्याह हैं। न मोटी ठूस। और मैंने इधर-उधर घूमकर देखा है, बीसियों भैंसों के सम्पर्क में आया हूं और इस नतीजे पर पहुँचा हूं कि भैंसें हर रंग की होती हैं और हर हजम

(मोटाई) की भी। दरअसल हर भैंस अपने असली रंग को छिपाने की कोशिश में रहती है (और उसका भी एक कारण है जिसका जिक्र मैंने आगे चलकर किया है) हजम को छिपा पाना कई बार कुछ भैंसों के लिए मुश्किल हो जाता है, वह कई बार फूट-फूट निकलता या पड़ता देखा गया है। साथ-ही-साथ कुछ भैंसों का हजम कई बार इतना कम हो जाता है कि उसे बढ़ाने और चढ़ाने के लिए उन्हें कई जतन करने पड़ते हैं। दरअसल भैंस की जिन्दगी इतनी आसान नहीं जितनी कि कुछ हैवान समझते हैं। भैंस बनना और बने रहना बड़े जोखम का काम है।

भैंसों के बारे में दूसरी भ्रान्ति यह है कि वे दूसरे देशों की अपेक्षा भारत में और दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा पंजाब में अधिक पाई जाती हैं। इसी भ्रान्ति का एक विकसित रूप यह है कि अपने देश की, और खास तौर पर पंजाब की, भैंसें ही असली भैंसें हैं, बाकी सब धोखा है। इस भ्रान्ति में निश्चय ही हमारा देश-प्रेम और प्रान्त-प्रेम एक निहायत अरुचिकर पूर्वाग्रह के स्वर में बोल रहा है। इसी प्रकार के पूर्वाग्रहों के आधार पर आज का संसार और आज का भारत बुरी तरह विभाजित है। एकीकरण के इस युग में ऐसी संकीर्णता शर्म का मुकाम है। हकीकत यह है कि भैंसें हर देश में और अपने देश के हर प्रान्त में पाई जाती हैं। तमाम सतही असमानताओं के बावजूद उनके भीतर, बहुत गहरे जाकर देखने पर, एक आश्चर्यजनक और बुनियादी समानता जो अनेक को एक (और अनाप को शनाप) के रूप में देखने में हमारी सहायता करती है। जरूरत सिर्फ ऊपरी आवरणों में उलझकर न रह जाने की है, जैसा कि शायर ने अर्ज किया है :

इसी रोज़-ओ-शब में उलझकर न रह जा

तीसरी भ्रान्ति की जड़ें बहुत गहरी हैं, हमारे कुसंस्कारों के गर्भ में धँसी हुई हैं। इन जड़ों को उखाड़ना हमारा युग-धर्म है, हमारे युग-बोध की तीखी पुकार है। साथ-ही-साथ यह काम बहुत दुश्वार है कि जड़ें जब उखाड़ी जाती हैं तो धरती को दुख होता है; हमें स्वयं दुख होता है और कई बार तो इस दुख को देखकर सहसा हम चीत्कार कर उठते हैं—धरती अब

भी घूम रही है ! मैं जिन जड़ों की ओर संकेत कर रहा हूँ उनका सम्बन्ध हमारे अटूट गाय-प्रेम से है। हम अभी तक, विज्ञान की राष्ट्रीय अन्धाधुन्ध प्रगति के बावजूद तीसरी प्लान की सफल गति-विधि के बावजूद, अपने राजनेताओं के मर्मस्पर्शी और गगन-भेदी भाषणों को अनसुना करते हुए, अपने-आपको गाय-प्रेम से मुक्त नहीं कर पाए। यह एक अजीब समस्या है, अजीब रुकावट है हमारी आधुनिकता के रास्ते में। हम अभी तक गाय को भैंस से बेहतर समझते हैं। भेद-भाव की भी कोई हद होती है। हम गाय को आर्य और भैंस को द्रविड़ समझते हैं। हम अभी तक गाय के दूध से स्वतन्त्र नहीं हो पाए और राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त किए हमें क़रीब दो दशक होने वाले हैं। हम अभी तक यही समझते हैं कि भैंस महज़ एक जानवर है और गाय हमारी माता-समान है—देवी है। यह हमारी गऊ-माता-प्रेम, हमारी नासमझी और हमारी शिशु-सुलभ विचार-शून्यता की अकाट्य दलील है। हमें समय के साथ चलना चाहिए और यह मानकर चलना चाहिए कि इस युग में भैंस का ही बोलबाला है, क्या हुआ जो उसका रंग (कहीं-कहीं) काला है !

दरअसल बात फिर वहीं आकर टिकती है। हम अभी तक काले और गोरे की तमीज़ को खत्म नहीं कर पाए, बदतमीज़ी की भी, भेद-भाव की तरह, कोई हद होती है। हम अभी तक उस हद से इधर ही भटक रहे हैं। हमने गोरों के खिलाफ़ युद्ध किया, एशिया जाग उठा, मुल्क आज़ाद हुआ लेकिन हमारी ज़ेहनियत अभी तक नहीं बदली। मजबूर होकर कहना पड़ता है, अंग्रेज़ चले गए लेकिन अंग्रेज़ियत नहीं गई। इसका सबसे बड़ा सबूत यह है कि अभी तक हम गाँवों की गोरी और गोरी की गाय का ही राग अलाप कर रहे हैं, यहाँ तक कि हमारी भैंसें भी हर समय गाय के गोरेपन को पा लेने के फिराक़ में ही गलतान रहती हैं।

मेरी पड़ोसिन भैंसों को ही लीजिए। जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ कि वे सारी-की-सारी काली-कलूटी भी नहीं। फिर भी न जाने उन्हें अपने रं के बारे में क्या वहम हो गया है कि जब देखो आईने के सामने सजती हैं

मोटे-मोटे लेप अपनी देह के ऊपर चढ़ाती रहती हैं। उबटना तो नही मलती कि वह चीज अब पुरानी हो चुकी है, कम-से-कम शहरी भैंसों के लिए लेकिन और क्या-क्या कुछ नही मलती, यह बताना मुश्किल होगा। जब देखो, अपनी खाल के बाल उतार रही हैं और सच पूछा जाए तो अपनी सूरत बिगाड़ रही हैं। जो काली हैं वे भूरी दिखाई देना चाहती हैं, जो भूरी हैं वे गोरी; जो गोरी हैं वे लाल···हँसी भी आती है और रोना भी—कहानी की उस मशहूर शहजादी की तरह। अब कौन इन्हें समझाए कि रूप और रंग दो अलग चीजें हैं, रंग में रूप नही, रूप मे रंग भले ही हो। कई बार मैंने अपनी कुछ पड़ोसिन भैंसों के साथ इस बात पर गम्भीर बहस-मुबाहिसा भी किया है, बड़ी-बड़ी दलीलें देने की कोशिश की है, समझाया है, बुझाया है, सौन्दर्य-शास्त्रों के हवाले दिए हैं, कसमें खाई हैं, लेकिन इस-सब के जवाब मे वे हमेशा यही गा उठती हैं :

भँवरा झूठी कसमें खाए

या

भँवरा बड़ा नादान है···

यहाँ यह लिख देना भी जरूरी है कि गाय को भैंस से सिर्फ रंग की बिना पर ही बेहतर नही समझा जाता कुछ दकियानूस लोग यह कहते भी सुने गए हैं कि गाय भैंस से ज्यादा वफादार, ज्यादा जाँनिसार, ज्यादा मिलनसार है। वफादारी और जाँनिसारी के बारे में तो मैं कुछ नहीं कह सकता···ये बीते युग की चीजें हैं और मुझे इनसे मर्द के अनधिकार दबाव और भावुकता की बू आती है—लेकिन मिलनसारी मे आधुनिक भैंसें पुरानी गायो से कहीं आगे हैं। हाथ हिला-हिलाकर मिलती हैं और, कभी-कभी, पंजे झाड़कर पीछे पड़ जाती हैं। गाय की-सी झेंप-झिझक और लोक-लाज उनमे नाम-मात्र नही। उसके बजाय एक अजीब खुलापन है, बेबाकी है, चालाकी है, जो किसी भी आधुनिका के लिए गर्व का कारण हो सकता है। अपनी पड़ोसिन भैंसों की मिलनसाराना हरकतों को देखकर अक्ल दंग रह जाती है और हैरत गुम हो जाती है। जब देखो वे किसी को मिलने जा

रही होती हैं या कोई उन्हें मिलने आ रहा होता है। मैं कैसे मानूं कि भैंसें गाय से कम मिलनसार हैं ?

यह भी सुनता हूँ कि भैंस की अपेक्षा गाय अपने बछड़े या बछड़ों को ज्यादा प्यार करती हैं, कि उसका हृदय बड़ा कोमल है, वह मातृत्व से ओतप्रोत है। इसके जवाब में तो यही कहना पड़ेगा कि गाय के साथ में पले बछड़ों को मौजूदा ज़माने की बातचीत समझने या करने की तमीज़ बहुत कम होती है, वह झेंपू और घरघुसू ही रहते हैं, उन्हें अंग्रेज़ी के मामूली-से-मामूली शब्दों का उच्चारण भी ठीक तरह से नहीं आता। वे बड़े हो जाने पर भी दूध-पीते बच्चे-से दिखाई देते हैं, आजकल के ज़माने में ऐसे लोगों को बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है, और देखा यह गया है कि गाय के बच्चे इन दिक्कतों का सामना करने के बजाय अपनी गाय को ही रोते रह जाते हैं। विपरीत इसके भैंस के बच्चे बड़े जानवर होते हैं, ईंट का जवाब हमेशा पत्थर से देते हैं, बात-बात पर आँख दिखाते हैं, अच्छा खाते हैं, अच्छा पहनते हैं, हर समय भैंसों की पीठ पर ही सवार नहीं रहते, नौकरों आदि के सर पर सवार रहते हैं।

दरअसल बात यह है कि भैंस आख़िर भैंस है, गाय हो ही नहीं सकती है और यह ज़माना भैंस का है, गाय का नहीं। मैंने कई गायों को भैंसों में परिणत होते देखा है, लेकिन किसी भैंस को गाय में बदलते नहीं देखा। जो लोग इस जमाने में भी गाय की रट लगाते हैं और भैंस को स्वीकार करने से इनकार करते हैं वे ग्वाले हैं, और ग्वालों का स्थान आजकल वृन्दावन और गोकुल में भी नहीं और न ही यह ज़माना गोपियों का रह गया है। वृन्दावन और मथुरा में भी सिवाय मोटे महात्माओं और दुबले भिखारियों के और कोई नज़र नहीं आता। गर्ज़ेकि ज़माना बदल गया है और गाय का स्थान भैंस ने ले लिया है, कुछ पुरानपन्थियों के मानने-न-मानने से कुछ होगा नहीं।

भैंसों के बारे में चौथी भ्रान्ति यह है कि वे हर वर्ग में पाई जाती हैं। इस भ्रान्ति का सम्बन्ध हमारी वर्ग-विरोधी विचार-धारा से है। हम हमेशा

यही साबित करना चाहते हैं कि मूलतः सभी वर्ग एक-से हैं, ऊँच-नीच नहीं होते? उनका सम्बन्ध कर्म से है, जन्म से नहीं। शायद ऐसा हम इसलिए सोचते हैं कि हम-जैसे [illegible] को पदवी या पैसे की सुविधा कहीं-न-कहीं सहेजे-संभाले हुए है। वैसे यह जरूर कहा जा सकता है कि भैंस-वृत्ति हर वर्ग में मिलती है। लेकिन भैंस हर वर्ग में मिल ही नहीं सकती। भैंस के दर्जे को पाने के लिए जो सज-धज, नखरा-टखरा, तड़क-भड़क, आन-बान और धमक-धूँ सर्वसम्मति से जरूरी मानी गई हैं, वह सिर्फ ऊँचे वर्ग के भैंसे ही जुटा पाते हैं। यह बात दूसरी है कि वर्गों की आपसी सीमा-रेखाएँ आजकल तेजी से बदल रही हैं और जो जानवर कल गाय दिखाई देते थे, परसों भैंस बन सामने आ खड़े हों। मैं इस परिस्थिति का जिक्र ऊपर कर चुका हूँ। इसलिए मुझे यह मानने में कोई संकोच नहीं कि भैंस-वृत्ति हर वर्ग में किसी-न-किसी मात्रा में जरूर दिखाई देती है। आखिर यह विचारों के सहज आदान-प्रदान का जमाना है और कोई वर्ग-विशेष नई लहरों के थपेड़ों से पूरी तरह बचा नहीं। इसीलिए चाहे कुछ भी कहूँ मैं तो यही कहता चला जाऊँगा कि आजकल हर गाय भैंस बन दिखाना चाहती है। इसीलिए मैंने गाय और भैंस का अन्तर समझाने की कोशिश ऊपर की है। मैं यह भी कहूँगा कि हर छोटी भैंस बड़ी भैंस बनना चाहती है और हर बड़ी भैंस उससे भी बड़ी। छोटी, बड़ी और उससे बड़ी भैंस का आपसी फर्क समझ पाना आसान काम नहीं और इस फर्क को समझा पाना तो करीब-करीब असम्भव है। निगाह की बारीकी हर किसी के बस की बात नहीं।

कुछ भी हो, मेरी पड़ोसिन भैंसें सारी-की-सारी ऊँचे वर्ग की हैं, कि मेरा पड़ोस ऊँचे वर्ग का है। नीच वर्ग के कुछ लोग सड़क के किनारे जरूर पड़े दिखाई देते हैं, लेकिन वह किनारा चन्द दिनों का मेहमान है, वहाँ कांटेदार फूल लगाने की हमारी योजना है। वैसे मैं स्वयं ऊँचे वर्ग का नहीं हूँ—मेरी अशिष्ट बातों से साफ जाहिर होता है। लेकिन चूँकि ऊपर उठना और ऊँचा चढ़ना हर इन्सान का ईमान है, मैंने भी किसी तरह खींच-तानकर, तिकड़म और हेरा-फेरी के सहारे, खून-पसीना और दिन-रात एक करके, इस वर्ग की

ऊँचाई को पा लिया है। और अब मेरा मेल-जोल, मेरी साज-बाज, मेरी उठा-बैठक और रफ़्तार-तक़रार ऊँचे वर्ग के लोगों से ही रहती है। और मुझे इस वर्ग की भैंसें खास तौर पर पसन्द हैं कि उनमें एक परिपक्व और असली नसल की भैंसों के सारे गुण खूब बन-सँवर और अकड़कर दिखाई देते हैं। जाहिर है कि मुझे गुणों का बनाव-शृंगार बहुत पसन्द है, कभी-कभी दिल्लगी के लिए भैंसों के अपने बनाव-शृंगार पर बहस-मुबाहिसा बेशक कर बैठूं, क्योंकि अपने-आपको नादान और झूठे कसमखोर किस्म का भँवरा किसी मस्त भैंस के मुखारविन्द से कहलवाने में भी एक नशा है। मैं इस नशे का आदी होता जा रहा हूँ।

मेरी इसी आदत को पहचानते हुए या उससे तंग आकर मेरी एक पड़ोसिन भैंस ने मेरा नाक में दम कर रखा है। जब कभी उससे टक्कर हो जाती है तो वह मेरा रास्ता रोक लेती है। कहती है—जाओगे जाने न दूंगी रास्ता रोक लूंगी! फिर अपने सींगों पर बिठाकर बड़े दुलार से कहती है—बाई साब, आखिर कब तक इस तरह पराई भैंसों की सींग-सेवा में फँसे रहोगे? अब एक गोरी-सी भैंस अपने लिए ले आओ न, कि उसके बग़ैर आप कुछ अधूरे-से, कुछ पागल-से नज़र आते हैं, और आपकी कार सूनी-सूनी-सी दिखाई देती है। फ्रैंकली बात कर रही हूँ, बाई साब, माइण्ड न करना!···मुझे उसका 'बाई साब' बहुत खलता है, लेकिन अपने में उसकी दिलचस्पी बहुत अच्छी लगती है। मैं बड़े प्यार से उसकी ओर न देखता हुआ कहता हूँ—भैंसजी, चाहता तो मैं भी वही हूँ, लेकिन टाइम ही नहीं मिलता। आप-जैसी कोई सुशील भैंस मिल जाए तो एटवंस उसके सींग पकड़कर बैठ जाऊँ। लेकिन करूँ क्या? कभी पंजाब जाऊँगा तो···वह मेरी खुशामद पर बहुत खुश होती है और बिजलियाँ गिराती हुई-सी कहती है—पंजाब जाने की क्या नीड है, बाई साब, दिल्ली में पंजाबन भैंसों की कौन-सी कमी है, आप वि[illegible] हों!···मैं लाजवाब हो जाता हूँ और खिसियाकर कहता हूँ—[illegible] जी, लेकिन अच्छी भैंस किस्मत से ही मिलती है और अपनी [illegible] बेल···वह मेरा दिल रखने के लिए पीठ पर एक धौल-

सी जमाते हुए कहती है—यह बात मिल्ली है। भैंस आफ्टर आल भैंस है। अच्छी क्या और बुरी क्या ?···मैं रोता हुआ-सा उससे हाथ मिलाकर फिर कभी मिलने का लालच देकर इजाजत माँग लेता हूँ और पीठ के दर्द को दिल का दर्द समझकर चुप हो जाता हूँ।

मजाक एक तरफ, भैंस के बिना मुझे अपनी कार वाकई बहुत सूनी-सूनी महसूस होती है। दूसरों की ठसाठस भरी हुई कारें देखता हूँ तो दिल बल्लियों उछलने के बजाय डूब-सा जाता है। इतवार-त्योहार के दिन अपने पड़ोस में वह रौनक जमती है कि मैं जल-भुन जाता हूँ। सोचने लगता हूँ कि इस सारी दौड़-धूप और लूट-खसूट से क्या फायदा अगर इन्सान की बगल वीरान है। दूसरों की भैंसों के आगे बीन बजाए जाना अपने चैन खोना नहीं तो और क्या है ? ऐसे मौकों पर एक भरपूर अकेलेपन का अनुभव होता है और मैं बेतहाशा कनाट प्लेस की ओर भाग खड़ा होता हूँ, लेकिन चैन वहाँ भी नहीं मिलता।

ऐसी मन:स्थिति में दूसरे सब काम और रोग एकदम छूट जाते हैं। अपनी हर चिर-वांछित पड़ोसिन भैंस आँख का तिनका बन खटकने लगती है। ख्वाहिश होती है, अपनी एक मोटी-सी भैंस हो—संस्कारवश यह भी ख्वाहिश होती है कि अपनी भैंस गोरी हो और यथासम्भव पंजाब की हो—ख्वाहिश होती है कि वह ऊँचे घराने की हो, तबीअत की हरी हो, सूरत में परी हो, अखबार-रिसाले पढ़नेवाली हो, 'फेमिना' और 'लेडीज होम र्नल' में उसकी तस्वीरें छपें, उठना-बैठना, चलना-मटकना, गाना-बजाना, और ज़रूरत पड़ने पर लड़ना-झगड़ना जानती हो, सोसाइटी-सभा में मेरी ाज रख सके, अपनी लाज की परवाह हरगिज न करे, अंग्रेजी बोले, मेरे ोस्तों से हाथ मिलाकर मिले और मेरे कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर कनाट प्लेस ं चले, और लोग उचक-उचककर देखें और सिमट-सिमटकर कहें—भैंस बन है !

वैसे कई बार ख्वाहिश के अलावा तलाश भी कर चुका हूँ। किसी का ग गोरा होता है तो उसके सींग तीखे नहीं होते; किसी की खाल चिकनी

ऊँचाई को पा लिया है। और अब मेरा मेल-जोल, मेरी साज-बाज, मेरी उठा-बैठक और रफ़्तार-तक़रार ऊँचे वर्ग के लोगों से ही रहती है। और मुझे इस वर्ग की भैंसें खास तौर पर पसन्द हैं कि उनमें एक परिपक्व और असली नसल की भैंसों के सारे गुण खूब बन-सँवर और अकड़कर दिखाई देते हैं। जाहिर है कि मुझे गुणों का बनाव-श्रृंगार बहुत पसन्द है, कभी-कभी दिल्लगी के लिए भैंसों के अपने बनाव-श्रृंगार पर बहस-मुबाहिसा बेशक कर बैठूं, क्योंकि अपने-आपको नादान और झूठे कसमखोर किस्म का भँवरा किसी मस्त भैंस के मुखारविन्द से कहलवाने में भी एक नशा है। मैं इस नशे का आदी होता जा रहा हूँ।

मेरी इसी आदत को पहचानते हुए या उससे तंग आकर मेरी एक पड़ोसिन भैंस ने मेरा नाक में दम कर रखा है। जब कभी उससे टक्कर हो जाती है तो वह मेरा रास्ता रोक लेती है। कहती है—जाओगे जाने न दूंगी रास्ता रोक लूंगी! फिर अपने सींगों पर बिठाकर बड़े दुलार से कहती है—बाई साब, आखिर कब तक इस तरह पराई भैंसों की सींग-सेवा में फंसे रहोगे? अब एक गोरी-सी भैंस अपने लिए ले आओ न, कि उसके बग़ैर आप कुछ अधूरे-से, कुछ पागल-से नज़र आते हैं, और आपकी कार सूनी-सूनी-सी दिखाई देती है। फ़्रैंकली बात कर रही हूँ, बाई साब, माइण्ड न करना!···मुझे उसका 'बाई साब' बहुत खलता है, लेकिन अपने में उसकी दिलचस्पी बहुत अच्छी लगती है। मैं बड़े प्यार से उसकी ओर न देखता हुआ कहता हूँ—भैंसजी, चाहता तो मैं भी वही हूँ, लेकिन टाइम ही नहीं मिलता। आप-जैसी कोई सुशील भैंस मिल जाए तो एटवंस उसके सींग पकड़कर बैठ जाऊँ। लेकिन करूँ क्या? कभी पंजाब जाऊँगा तो···वह मेरी खुशामद पर बहुत खुश होती है और बिजलियाँ गिराती हुई-सी कहती है—पंजाब जाने की क्या नीड है, बाई साब, दिल्ली में पंजाबन भैंसों की कौन-सी कमी है, आर विलिंग तो हों!···मैं लाजवाब हो जाता हूँ और खिसियाकर कहता हूँ—वह तो ठीक है जी, लेकिन अच्छी भैंस किस्मत से ही मिलती है और अपनी किस्मत यूँ तो वेरी वेल···वह मेरा दिल रखने के लिए पीठ पर एक धौल-

सी जमाते हुए कहती है—यह बात मिल्की है। भैंस आफ्टर आल भैंस है। अच्छी क्या और बुरी क्या ?…मैं रोता हुआ-सा उससे हाथ मिलाकर फिर कभी मिलने का लालच देकर इजाजत माँग लेता हूँ और पीठ के दर्द को दिल का दर्द समझकर चुप हो जाता हूँ।

मजाक एक तरफ, भैंस के बिना मुझे अपनी कार वाकई बहुत सूनी-सूनी महसूस होती है। दूसरों की ठसाठस भरी हुई कारें देखता हूँ तो दिल बल्लियों उछलने के बजाय डूब-सा जाता है। इतवार-त्योहार के दिन अपने पड़ोस में वह रौनक जमती है कि मैं जल-भुन जाता हूँ। सोचने लगता हूँ कि इस सारी दौड़-धूप और लूट-खसूट से क्या फायदा अगर दालान की बगल वीरान है। दूसरों की भैंसों के आगे बीन बजाए जाना अपने चैन खोना नहीं तो और क्या है ? ऐसे मौकों पर एक भरपूर अकेलेपन का अनुभव होता है और मैं बेतहाशा मलाड प्लेस की ओर भाग खड़ा होता हूँ, लेकिन चैन वहाँ भी नहीं मिलता।

ऐसी मन:स्थिति में दूसरे सब काम और रोग एकदम छूट जाते हैं। पनी हर चिर-वांछित पड़ोसिन भैंस आँख का तिनका बन खटकने लगती । ख्वाहिश होती है, अपनी एक मोटी-सी भैंस हो—संस्कारवश यह भी ाहिश होती है कि अपनी भैंस गोरी हो और यथासम्भव पंजाब की हो -ख्वाहिश होती है कि वह ऊँचे घराने की हो, तबीअत की हरी हो, सूरत परी हो, अखबार-रिसाले पढ़नेवाली हो, 'फ़ेमिना' और 'लेडीज़ होम ल' में उसकी तस्वीरें छपें, उठना-बैठना, चलना-मटकना, गाना-बजाना, र जरूरत पड़ने पर लड़ना-झगड़ना जानती हो, सोसाइटी-सभा में मेरी न रख सके, अपनी लाज की परवाह हरगिज न करे, अंग्रेजी बोले, मेरे थों में हाथ मिलाकर मिले और मेरे कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर मलाड प्लेस चले, और लोग उचक-उचककर देखें और सिमट-सिमटकर कहें—भैंस न है!

वैसे कई बार ख्वाहिश के अलावा तलाश भी कर चुका हूँ। किसी का गोरा होता है तो उसके सींग तीखे नहीं होते; किसी की खाल चिकनी

होती है तो उसकी आवाज़ पर्याप्त-मात्रा में चुपड़ी हुई नहीं होती; किसी को गाना-बजाना आता है तो उसे उठने-बैठने में बेहद तकलीफ़ होती है; किसी का घराना ऊँचा है तो उसका निशाना भी उतना ही ऊँचा है, कोई कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर चलने को तैयार नज़र आती है तो आशंका उठ खड़ी होती है कि एक-दो दिन की सह-चाल के बाद अपना कन्धा ही नहीं रहेगा और फिर वह जाएगी कहाँ पर; कोई अपने-आपको पढ़ी-लिखी बताती है तो पढ़ाई-लिखाई पर से अपना विश्वास ही उड़ने लगता है। मेरे कई भैंसदान दोस्त मेरी यह आख़िरी बात सुनकर मेरी अक्ल के नाख़ूनों की लम्बाई का ज़िक्र छेड़ देते हैं।

वे कहते हैं कि भैंसों के बारे में पाँचवीं भ्रान्ति यह है कि उनके लिए सुरक्षा ज़रूरी है। ज़ाहिर है कि मैं खुद इस भ्रान्ति का शिकार हूँ। मेरे दोस्त मुझे समझाते हैं कि असली भैंस वह जो बिना पढ़े-लिखे पढ़ी-लिखी दिखाई दे, कि भैंस दरअसल दिखाने और मन बहलाने की चीज़ है। मैं जवाब देता हूँ कि सही मानों में पढ़ी-लिखी भैंस से ही मेरा मन बहल सकता है और उसे दिखाने में भी ज़्यादा लुत्फ़ आ सकता है। वे तड़प उठते हैं—हमारी भैंसें क्या बुरी हैं? सब की सब बी० ए० पास हैं। सही मानों से तुम्हारा मतलब क्या है? तुम अभी अनाड़ी हो, नहीं जानते कि जो ज़्यादा पढ़-लिख जाती हैं उनकी खाल मुरझा जाती है और दूध सूख जाता है। ऐसी भैंसों से फ़ायदा? वे तो भैंस-समाज के माथे पर कलंक के समान हैं। खामोश हो जाता हूँ और वे अपनी भैंसों की तारीफ़ों के पुल बाँधते हुए, मेरी नुक़्ताचीनी से अपनी नुक़्तादानी को बेहतर बताते हुए, मुझे घसीट कर अपने साथ क्लब में ले जाते हैं, जहाँ जमी भैंसों की फबन और चकाचौंध को देखकर मैं हथियार डाल देता हूँ। फिर पराई भैंसों की नाज़बरदारियों में अपने अकेलेपन को थोड़ी देर के लिए भूल जाता हूँ और भैंस-भैंसा संवाद सुनने लगता हूँ। मुझे देखते ही मेरी चिर-परिचित पड़ोसिन भैंसें मुझपर पिल पड़ती हैं—

…बाई साब, मुझे आपपर बहुत पिटी आती है!…

···डालिंग जी, अपने दोस्त को किसी बढ़िया कुँवारी भैंस से मिलाइए न !···देखो तो कैसे लास्ट-से खड़े हैं !···

···स्वीट हार्ट, हमारा दोस्त मूर्ख है।···

···डालिंग, यु आर द लिमिट। ··

···बाई साब, मैं आपसे एक सवाल पूछना चाहती हूँ। प्लीज सोचकर जवाब दीजिए। बताइए, अक्ल बड़ी है कि भैंस ?

इस सवाल पर सब भैंसें एक साथ हँस उठती हैं और मैं बहुत छोटा हो जाता हूँ। सहसा मेरे मन में एक और छठी भ्रान्ति उठ आती है और वह यह कि भैंस वह जिसे देख और भागकर छठी का दूध याद आ जाए। वैसे मैं जानता हूँ कि छठी का दूध बाजार में नहीं बिकता, सिर्फ एक मुहावराती बात है। लेकिन जब-जब भी छठी का दूध याद आता है, मैं भैंस से भयभीत हो उठता हूँ। यही भय शायद मुझे अभी तक भैंस से बचाए हुए है। हो सकता है, मैं स्वयं अभी तक गाय-प्रेम से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाया। जल्द ही किसी तजर्बेकार भैंसदान के पास जाऊँगा।

भैंसों के बारे में सातवीं भ्रान्ति···लेकिन अब और नहीं। बात बहुत तूल पकड़ चुकी है और बाहर से आवाज आ रही है—बाई साब, आप मेरे साथ भैंस समिति की एनुअल मीटिंग में नहीं अकम्पनी करेंगे क्या ?

● ●

समाधि

'आज कहीं नहीं जाऊँगा, कहीं भी नहीं।'

विमल कुछ देर मुँह टेढ़ा किए एक टक मेज़ पर पड़े काग़ज़ों को घूरता रहा।

बेकली कहीं जाने (या न जाने) से, किसीसे मिलने (या न मिलने) से दिन-भर मुँह लटकाए भटकते रहने (या रात-भर करवटें बदलते रहने) से, रोने (गाने या गुनगुनाने) से, हँसने (हँसाने या हिनहिनाने) से कदापि दूर नहीं होती। बेकली को दूर करने का एक मात्र उपाय है—साली को पकड़कर (गरदन से यदि सम्भव हो तो) कला में व्यक्त कर दो।

विमल अनायास धीरे से मुस्करा दिया।

धीरे से मुस्करा दिए, कहने लगे यह प्यार है।

विमल ने सायास अपने होंठों की फड़कन को दबाते हुए फिर मेज़ पर पड़े काग़ज़ों की ओर घूरना शुरू कर दिया और उसका मुँह फिर टेढ़ा हो गया।

कहते रहें। जो उनके जी में आए, किन्तु मैं आज भीष्म-प्रतिज्ञा करके बैठा हूं। आज यहां से हिल के नहीं दूंगा। पढ़ूंगा, लिखूंगा, (अर्थात् जान

लड़ा दूँगा) कहते हैं बिना तपस्या के कुछ भी नही हो पाता (अर्थात् जो होता है वह न-कुछ के बराबर है)। बिलकुल ठीक कहते हैं।

तपस्या, साधना, आराधना, घोर निराशा, (घनघोर घटाएँ), घनीभूत अनुभूति और (अन्तिम है) घनी मूछें।

विमल अब के मुस्कराया नही, बल्कि अपने पिता की घनी मूँछो के आक्रोशजन्य नृत्य की कल्पना करके किंचित् काँप उठा। उठकर दरवाजा बन्द कर दूँ (आज इतवार है), कही पिताजी एक हाथ मे चश्मा उठाए, दूसरे से अखबार लटकाए, मुँह पर एक कृत्रिम मुस्कान की झिल्ली चढाए कमरे मे आ घुसे तो (एक तो उन्हे निकालना मुश्किल हो जाएगा और दूसरे) सारी साधना 'पुलं' हो जाएगी, वे आते ही भविष्यवाणी करने लगेंगे और अखबार मे निकले नौकरियो के विज्ञापन दिखा-दिखाकर उसे पागल कर देंगे।

विमल हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। उसने धीरे से दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया और एक लम्बी साँस ली। वापस मेज की ओर लौटते हुए उसकी दृष्टि (दुर्भाग्यवश) अलमारी मे सजी पुस्तको की पंक्तियो पर जा टिकी और वह तत्क्षण वही ठिठक गया।

"विमल, बड़े-बड़े ग्रन्थ रखे हुए हैं ?"

शर्म के मारे विमल की आँखें जमीन मे गड़ने लगी और उसका एक हाथ आदि-ग्रन्थ से उलझ गया।

"एक चुल्लू-भर पानी मँगवाओ (या स्वयं ही ले आओ) और उसमें डूब मरो।"

मेज तक पहुँचते-पहुँचते विमल ने एक बार कनखियो से अलमारी की ओर देखा और हताश होकर कुर्सी पर जा गिरा। फिर मेज पर पड़े कोरे कागज़ों की ढेरी की ओर एक-टक घूरने लगा। फिर यकायक कलम उठाकर मेज पर झुक गया। थोड़ी ही देर मे एक कागज काला हो गया, किन्तु उसके साथ ही मानो विमल का माथा भी कलंकित हो गया हो।

"सोचो। सींचो। गोड़ो। निराई करो। तब कही जाकर शायद कुछ

उपजे। बंजर भूमि, झाड़-झंखाड़। बकवास मत करो। (बकवास) लिखो और···(फाड़ दो)।"

विमल ने अभी तक जो लिखा था एकाएक सब फाड़ दिया। चर्र-चर्र की आवाज़ कमरे की निस्तब्धता को चीरती हुई क्रमशः लुप्त हो गई और काग़ज़ के पुरज़े फ़र्श पर बिखर गए। विमल ने अनुभव किया मानो किसी ने उसकी तपस्या की धज्जियाँ उड़ा दी हों।

"विमल, क्या कर रहे हो ?"

"अपनी कृति की इति देख रहा हूँ।"

"देखो, ग़ौर से देखो।"

बिमल ने कलम मेज़ पर फेंककर दोनों हाथों से माथे को जकड़ लिया। माथे की त्वचा के पीछे बहते हुए ऊब के दरिया में कई एक छोटी-छोटी मछलियाँ फुदकने लगीं। विमल का चिन्तन उन मछलियों को फँसाने का (व्यर्थ) उपक्रम करने लगा।

"विमल, तुम्हारे माथे में क्या हो रहा है? शायद तसव्वुरात की परछाइयाँ उभरती हैं।"

विमल की जकड़ कुछ ढीली हो गई और वह लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगा।

"विमल, यह क्या कर रहे हो ?"

"प्राणायाम !"

"और अब ?"

"आदिग्रन्थेर···"

विमल को फिर अपने होंठों पर एक मुस्कराहट-सी बिछती हुई अनुभव हुई और उसे लगा मानो उसके सामने मेज़ पर पड़े काग़ज़ों पर मातम की सफ़ें बिछती चली जा रही हों। उसके दाँतों ने (जब यह देखा तो) मुस्कराहट को काटना शुरू कर दिया। मुस्कराहट के संग (बेचारा) निचला होंठ भी कट गया, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार गेहूँ के साथ घुन पिस जाता है। विमल ने कटे हुए होंठ को चूसते हुए महसूस किया जैसे वह

आती मुस्कराहट का खून चूस रहा हो !

विमल एक सर्द आह भरकर उठा और लड़खड़ाता हुआ शीशे के सामने जा खड़ा हुआ।

"विमल रोते क्यों हो, कहानी नहीं लिखी जा रही है इसलिए या कि सूरत ही ऐसी है ?"

"जी, दोनों ही बातें हैं।"

"विमल, तुम बहुत फ्रैंक हो।"

"जी, मेरी बदक़िस्मती है।"

विमल को आँखों में कुछ सुलगने-सा लगा।

"विमल यहाँ खड़े क्या कर रहे हो ?"

"जी, झक मार रहा हूँ।"

"कुर्सी में बैठकर मारो।"

"जो आज्ञा।"

विमल चुपचाप कुर्सी में बैठ गया। इस बार उसने आलमारी की ओर नहीं देखा। कनखियों से भी नहीं। उसने कलम उठाई, (निब कुछ टेढ़ी हो गई थी) और मेज पर झुका ही था कि…

"विमल की कहानी सुनोगे ?"

"ज़रूर सुनेंगे, रमू, ज़रूर सुनेंगे।"

"हाँ भई, सब लोग ध्यानपूर्वक सुनें और भरसक लाभ उठाएँ, विशेषकर वे जो स्वयं कहानी लेखक हैं…। एक दो तीन !!!"

ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। हरी-हरी घास बिछी हुई थी। आकाश गहरे-नीले रंग का था। धरती (माता) का रंग मुझे याद नहीं, शायद वह भी उस समय गहरे-नीले रंग की ही थी। पंछी चहचहा रहे थे और पशु उस हरी-हरी घास पर विचर रहे होंगे, ऐसा मेरा अनुमान है। और इसी बीच श्यामा कमरे में आई।…वह निगोड़ी कमरे में क्या करने आई, यह वह स्वयं नहीं जानती, विमल बेचारा तो क्या जानेगा। यह (हतभागी) श्यामा

कई बार इस कमरे में आई है और लगभग उतनी ही बार कमरे से बाहर भी चली गई है (क्या बात है मेरी इस पीत-वर्ण श्यामा की) परन्तु यह कमरा अभी तक वहीं-का-वहीं खड़ा है। अजीब शै है यह कमरा भी ! नाना प्रकार के लोग इस कमरे में आते हैं और चले जाते हैं, आते हैं और चले जाते हैं। और-तो-और, विमल की कहानियों के ही असंख्य पात्र यदा-कदा इस कमरे में आए हैं अपनी-अपनी (बेसुरी) बाँसुरी बजाकर विमल के नाम पर फटकार भेजते हुए अपना-सा मुँह लेकर चले गए हैं। किन्तु यह कमरा ऐसा जड़ है, ऐसा निर्मम है कि यहाँ से टस-से-मस नहीं होता। क्या है यह। आह यह कमरा। आह इस कमरे की निस्तब्धता। श्यामा बेचारी किस्मत की मारी, इसी सोच में गोते लगाती-लगाती जब एकदम बेहाल हो जाती है तो अपने सिर पर सवार इस आतताई विमल की ओर सजल नेत्रों से देखकर पुकार उठती है—'क्यों गुरू, तुम मेरा पीछा कब छोड़ोगे ?' आह बेचारी श्यामा ! आह वह आर्द्रा !

अब भला पूछो इससे कि यह भी कोई बात है। अगर लिखना ही है—पहले तो हम यही मानने के लिए तैयार नहीं कि तुम्हें किसी डॉक्टर या वैद्य ने कहा है कि ज़रूर लिखो ही—तो कम-से-कम ऐसा तो लिखो जिसका कोई सिर-पैर तो हो, नंगा सिर हो, नंगे पैर हों, हम कुछ नहीं कहेंगे, लेकिन कुछ हो तो। श्यामा आई। अरे भई सुन लिया। आई है तो आए, हम क्या करें। हुआ न। श्यामा आई। जैसे वही तो एक आई है, बाकी के सब तो बस गए ही गए हैं। साले, हमने तेरी सेवा में सर्वस्व लुटा दिया है, अपनी लुटिया तक डुबो दी है और 'सी' तक नहीं की और तुझे दिन-रात उस श्यामा की ही चिन्ता है। अब छोड़ भी दो बेचारी को। अच्छा विमल, एक बात का जवाब दो, सिर्फ़ एक का, अगर दूसरी पूछें तो हमें पकड़कर पुलिस के हवाले कर देना। मान लो कि एक रोज़ श्यामा नहीं आती, सपोज़ करो कि नहीं आती, हम एक बात कहते हैं, कि एक रोज़ किसी भी कारण से—सिर्फ़ सपोज़ कर रहे हैं इसलिए कारण कोई भी हो सकता है—श्यामा नहीं आती तो क्या हो जाएगा। आफ़त आ जाएगी न ! अगर श्यामा के न आने से,

कारण कुछ भी हो, आफ़त आ जाती है तो बता दो हम अभी मौन हो जाएँगे। बोलो। बोलो हम कहते हैं कि एक दिन के लिए भी तुम उसे बाहर चल रही ठंडी-ठंडी हवा में खुला नहीं छोड़ सकते कि बेचारी हरी-हरी घास पर क्षण-भर के लिए लोट ले और अपने भीतर की आग को इसी तरह शान्त कर ले क्योंकि उस कमरे में आ-आकर तो वह हार गई। एक दिन के लिए छोड़ दो बेचारी को, विमल। सिर्फ़ एक दिन के लिए। श्यामा आई। जान ले लो बेचारी की। अच्छा उसकी नहीं तो हमारी ही ले लो। श्यामा आई। चँद साले, अगर लिखना ही है तो कुछ इस कोटि का लिखो···

What is life
Without a knife
To one who has tasted a higher existence !
और या फिर ऐसा लिखो—
O hush thee my baby
Thy sire was a knight
Thy mother a lady
Both lovely and bright
The woods and the glens
And the meadows you see
Are all, dear baby,
Belonging to thee.
श्यामा आई। कोई तुक है, कोई बात है।

"विमल, क्या हो रहा है ?"

"रमू याद आ रहा है।

"उनके यहाँ जाना चाहते हो ?"

"नहीं। कहीं भी नहीं जाना चाहता।"

"तो फिर अपना काम करो ?"

"ओ० के० !"

विमल ने सिर को एक भरपूर झटका दिया और आँखें बन्द करके बैठ गया। आँखों का बन्द होना था कि रमू एक कलाबाज़ी मारकर फिर उसके सामने आ गया।······

"देखो विमल, इस तरह देखो। बस धीरे से मुस्करा दो, हम समझेंगे कि यही प्यार है। नहीं कहोगे। बोलो। बोलोगे कि करूँ गुदगुदी। हाँ जी, हम तो बहुत ही बुरे हैं। हम तो श्यामा के तलुओं की धूल भी नहीं, हमें तो बस जान से मार दो। किल मी, मर्डर मी, स्लाटर मी। जूलियट्टा, जूलियट्टा, प्यारी जूलियट्टा। अब भी नहीं हँसोगे। नहीं हँसोगे। अच्छा तो बस श्यामा को लेकर घुस जाओ अपने कमरे में। हाँ जी, हम तो बहुत बल्गर हैं। महात्मा बुद्ध के अवतार तो बस तुम्हीं हो। विमल, कल भारत भूषण मिला था। कह रहा था—पाँच हज़ार ई० पू० से लेकर अब तक के सारे भारतीय इतिहास का अध्ययन करने के बाद कल रात ठीक बारह बजे मैं इस···ख़ैर छोड़ो भारत भूषण को, उसकी कभी फिर सुनाऊँगा। इस समय तो यही बताओ कि तुमने हिन्दुस्तानी की 'रोमियो और जूलियट' देखी है। नहीं तो साले तूने देखा ही क्या है सिवाय श्यामा के ? जाओ साले, जाकर श्यामा के तलुए चाटो। हम तो अब दो घड़ी अपनी श्यामा से दिल बहलाएँगे।

"रानी अर्थात् कुईन अर्थात् मिसिज़ किंग।" अरे भई इधर तो आओ। हम विमल नहीं हैं कि बस सात कोस की दूरी से ही बहल जाएँ। और तुम श्यामा नहीं हो कि आओ और खाली हाथ चली जाओ। सच कहता हूँ कि आज तो वह ग़ज़ब ढा रही हो, वह ग़ज़ब ढा रही हो कि सती सावित्री सीता ने भी क्या ढाया होगा। बस एक गिलास चाय और पिलवा दो, मेरी रानी। क्या कहा यह हमारा आठवाँ गिलास है। देखो मिसिज़ किंग, हम तुम्हारे पाँव पड़ते हैं, हम जो आज तक किसी के पाँव नहीं पड़े, श्यामा के भी नहीं। सिर्फ़ एक गिलास। हम दोनों बाँट लेंगे। प्लीज़, पिताजी, प्लीज। बस यहीं

ने आवाज़ लगा दो और फिर आकर थोड़ी देर हमारी गोदी में बैठ जाओ, अच्छा वहाँ नहीं बैठना चाहती तो हमारे चूड़े पर चढ़कर बैठ जाओ, ओहदे विच की फ़र्क पैन्दा है। विमल मैंने पंजाबी स्पिरिट को पकड़ लिया है और अब ऐसी पंजाबी बोलता हूँ कि आठ पंजाबी एक तरफ़ हो जाएँ और मैं दूसरी तरफ़, अगर सबका मुँह न तोड़कर रख दूँ तो कहना रमू दे विच बकवान होन्दा पया है। क्यों कैसी लगी। अबे रानी महामाया, दुर्गे, तुमने अभी तक चाय के लिए नहीं कहा। अच्छा तो हम अभी, इसी समय on the spot रो-रो के जान देंगे, तब क्या अच्छा लगेगा!

'विमल, देखो, जब तक हमारी बात पूरी नहीं होती हम उठने नहीं देंगे। जाओगे जाने नहीं देंगे, रस्ता रोक लेंगे। सो और क्या, हमें क्या याद नहीं। विमल, इस तरह उचक्दम की बीमारी हो जाएगी। एक जगह जमकर बैठना सीखो। अब हम हैं कल शाम से यहीं बैठे हैं और परसों दोपहर तक यहीं बैठे रहने का विचार है। तुम बैठो तो विमल हम अभी जाकर श्यामा को भी यहीं बुला लाएँगे। फिर तो बैठोगे।

''साले, बिमल, तेरी सारी उमर श्यामा के इन्तज़ार में बीत जाएगी और श्यामा आके नहीं देगी। हाँ रानी, हमने एक दिन उससे पूछा था। हाँ, हाँ, एक दिन हम भी हरी-हरी घास पर टहलने के लिए निकल गए थे। आखिर तुम जानो इन्सान हैं, क्या हुआ जो श्यामा नहीं तो। हाँ तो एक दिन—अरे भई उसी दिन जब बहुत ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी और आकाश गहरे-नीले रंग का था और तुमने कहा था, आज तो विमल की चेत गई, आज तो श्यामा का बाप भी उसके पीछे-पीछे आ निकलेगा—हाँ तो उसी दिन हम थोड़ी देर के लिए अकेले निकल गए थे और वहीं-कहीं हम ने हरी-हरी घास पर एक युवती को औंधे मुँह लेटा पाया। हमने कहा, हो-न-हो, है यह श्यामा ही। सो हमने आगे बढ़कर सादर नमस्कार किया और बड़े विनीत भाव से पूछा—श्यामा जी, आज आप बिमल के उस कमरे में न होकर यहाँ कैसे, कुशल तो है? श्यामा ने तुनककर कहा—अब हम उस कमरे में कभी नहीं जाएँगे। हम पूछना चाहते थे कि आखिर बात क्या हुई कि इतने

में एक चौकीदार ने आकर हमारी ओर ऐसे देखा कि जैसे हम ही विमल हों। हम चुपचाप वापस चले आए।

“अबे गोबर गणेश, अब तो कुछ बोल। बोल, नहीं तो हम समझेंगे कि तुम भी राम खिलौने की तरह बहुत गहरे में चले गए हो। राम खिलौने को नहीं जानते? राम खिलौने was the greatest genius ever born! उससे बड़ा जीनियस हमने आज तक नहीं देखा। हाँ भई, सच कहते हैं। जब हमारे साथ पढ़ता था तो हमें जमुना पार ले जाता था और हमें मार-मारकर हमसे कहलवाया करता था कि वह जीनियस है। हम चिल्ला-चिल्लाकर कहते थे—राम खिलौने तू दुनिया का सबसे बड़ा जीनियस है, लेकिन उसे यक़ीन थोड़े ही आता था। कहता था—तुम झूठ कहते हो। हम कहते—राम खिलौने, अगर झूठ कहें तो हमें पाप चढ़े। लेकिन राम खिलौने को फिर भी यकीन नहीं आता था। और फिर हमारे देखते-ही-देखते राम खिलौने कहीं गहरे में चला जाता था और उसका मुंह इसी तरह लटक जाता था जिस तरह इस वक़्त तेरा लटका हुआ है। हाँ, वह अब भी है। नई सड़क पर लोहे की दुकान करता है। हम डर के मारे उधर जाते नहीं, कहीं फिर उसने मार-पीट शुरू कर दी और हमसे पूछने लगा तो भीड़ इकट्ठी हो जाएगी।

“अच्छा, भई विमल, अब हम थक गए। काफ़ी बकवास कर लिया, लेकिन तुम नहीं बोले। न सही। लेकिन अब हमसे भी और नहीं बोला जाता। हम भी गहरे में जा रहे हैं। यानी सो रहे हैं। रानी, देखो हमें जगाना नहीं, नहीं तो हम उठकर फिर वाही-तबाही बकना शुरू कर देंगे, हां-हाँ, हम अपना भला-बुरा खूब जानते हैं, हम कोई विमल थोड़े हैं, हम खुद ही जग जाएँगे…”

•

विमल ने आँखें खोलीं। घुटनों पर हाथ रखकर उठा और दिल पर हाथ रखकर फिर वहीं बैठ गया।

“नहीं, आज कहीं नहीं जाऊँगा।”

कुछ देर इसी वाक्य को दोहरा लेने के बाद जब विमल की संकल्प-शक्ति को कुछ बल मिला तो उसका हाथ फिर कलम की ओर बढ़ा। कलम उठा कर उसने फिर आँखें मूँद लीं, लेकिन उसमें एकाग्रता की बजाय उसे नींद-सी आने लगी। फिर उसने दाँत पीसकर सिर को जोर से एक झटका दिया। सिर किसी झुनझुने की तरह बज उठा और उसमें पड़ी कंकरियाँ एक-दूसरी में गड़मड हो गईं। विमल ने मेज पर झुककर धड़ाधड़ लिखना शुरू कर दिया।

"लिखने से पहले मैं हमेशा डूडलिंग किया करता हूँ," विमल ने सबसे ऊपर यही वाक्य लिखा और डूडलिंग करने लगा—

"रमू, रानी, नीलम देश की रानी की अमर कहानी, नई सड़क पर लोहे की दुकान, जीनियस, चर्चिल ने हिटलर को धक्का दिया, टेलिफोन लड़खड़ाया, गहराई, गौरैये, गोरी, बोरी, बोरियत। बताओ रमू मैं जीनियस हूँ कि नहीं, राम खिलौने, आर्टिस्ट, चित्रों में घुन लग गया है, दिमाग़ में भी। अंग शिथिल हो गए हैं, ग़ालिब के, एक ढूँढ़ो हज़ार मिलते हैं, कुछ कमी नहीं है, अगर देश में कमी है तो सिर्फ़ एक चीज़ की और वह चीज़ क्या है, थोथा-बसन्त, पंचमी, शिल्पकार, सप्तमी। एक प्रयाग और करूँगा और फिर मौन धारण कर लूँगा, विदेश चले, क्या बताएँ, ऊब गए, उलझ गए, डूब गए, गहराइयों में खो गए, चार पैसे, घर फँसे आएँ, अजीब दुर्दशा हो रही है, सिगरी, हर एक की, लिखेंगे, जब तक दम में दम है, जिन्दगी का रहस्य, टटोलेंगे, अँधेरे में, भटकेंगे, उभरेंगे, कभी तो, क्या हुआ, जो हुआ सो हुआ, जो नहीं हुआ उसी की चिन्ता है, हमको सताओ नहीं, हम बहुत दुखी हैं, कुछ पता भी चले साव है कि बेदारी, कुछ पता नहीं चलता, कुछ पता नहीं चलता, गुमशुदा की तलाश, पर्दा-फ़ाश, नहीं होने देंगे, हम बड़े वह हैं…

विमल क्या कर रहे हो ?

झुनझुने में पड़ी कंकरियाँ काग़ज़ पर बिखेर रहा हूँ।

शाबाश !

वाह वाह, बहुत अच्छे, बहुत अच्छे, खूब, क्या अनुपम चित्र है, मौत के

माते, सृजन के सोते, सूख गए, अव क्या होगा, उस अवाध का, जिसकी खोज में हम निकले थे, वापस आ जाओ, खोज पूरी हो गई, क्या हुआ जो हाथ कुछ भी नहीं लगा, सिकन्दर जव मरा तो उस वेचारे के भी दोनों हाथ खाली थे, लौट के वापस चला आऊँ मेरी आदत नहीं, नहीं, ऐसा हरगिज़ नहीं होगा, इतवार का दिन है, सुवह के दस वजे हैं, सव नर और नारी, ऊधम मचा हुआ है, इसी ऊधम को शब्द-वद्ध कर रहा हूँ, शब्दों का वध, सुनोगे, लिखोगे, क्या, अपना सर पीटो, और पीटो, घंटियो वजो, देश को तजो, इस देश में, अपने देश में, सव कुछ है प्यारे, फिर तुम इसे तजकर, कहाँ, मास्को, नहीं, अपने देश में सव कुछ है प्यारे, कन्द मूल जो हैं, हम प्रस्तुत हैं, माला, मन की, उस पार और इस पार की, अपार की, उपहार की अर्थात् गले की, सम्पादक के नाम पत्रों की, चुराए हुए लेखों की, वड़े-वड़े सवाल उठाए जा रहे हैं, कौन उठा रहा है, वहुत से सरफिरे हैं, जवाव कौन देगा, यही तो सवाल है, जीना मुहाल है, माई का लाल, वको मत, लिखो, तथ्य और सत्य का अंतर, प्रश्न और उत्तर, काफ़ी हाउस में, लड़का-लड़की-सम्वाद, अवसाद, केदारनाथ (सिंह) की यात्रा को गए थे, एक लम्वी कविता, सुनिएगा, अनुवाद, कहानी में गठन नहीं है, कदाचित् कहानीकार ने कसरत वहुत कम की है, हमने एक पहलवान देखा था, वाह रे गठन, मैं कहानीकार को सुझाव देता हूँ कि वह भी जाकर उसी पहलवान को देख भर आए, या फिर हमने एक मॉडल स्त्री को देखा था, यानी हमने उस पर निगाहों का पथराव किया था, किन्तु वह फिर भी नहीं विखरी, उलटा और निखर गई थी, किंचित् विफर भी गई थी, हम भाग खड़े हुए थे, घर पहुँचे तो हाँफ रहे थे, वुरी तरह, हमने कहा, हम वाल-वाल वच गए, जी नहीं, यह वाल की खाल नहीं आप ही की खाल है, जो हम उतार रहे हैं, हिन्दी साहित्य पर एक साथ खिड़कियों की वारिश होने लगी है, रोशनदानों के ओले पड़ रहे हैं, अव क्या होगा, ह्यूवर्ट, हम कहाँ जा रहे हैं, हमारी संवेदना पर काई जम गई है, आपकी पर भी, फिर तो यों कहें कि हमारे और आपके वीच तादात्म्य स्थापित होने जा रहा है, हाँ मेरी

कान, आह, उफ़······"

"विमल कराह क्यों रहे हो ?"
"कि राह नहीं मिलती ।"

"[illegible], बेचकर ही दम लूँगा, अभी तो श्यामकुमार हमने लिखा ही क्या है, एक हम ही ने क्या, किसी ने भी क्या लिखा है, श्यामकुमार एक बात है, आपके चित्र हमारी समझ में क्यों नहीं आते, फिर भी बहुत अच्छे लगते हैं, यह दूसरी बात है कि हम खरीद नहीं पाते, लेकिन श्यामकुमार यह तो बताओ कि इन टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं में जो जादू है वह तुम्हें कहाँ पड़ा मिल गया, बोलो श्यामकुमार, ओजी, ओजी, श्यामकुमार, इस आँखों का क्या मतलब है, हम तुम्हारे चित्रों की प्रशंसा करने आए हैं और तुम······और श्यामकुमार एकाएक सिर पर पाँव रखकर भाग खड़ा हुआ, प्रशंसकों की भीड़ को चीरता हुआ, क्रन्दन करता हुआ और प्रशंसकों का प्रतिनिधि उसके पीछे-पीछे भागने लगा, सड़क के दोनों ओर तमाशाइयों की भीड़ कतारें बाँधकर खड़ी हो गई, कुछ तमाशाई सोच रहे थे कि क्या आज फिर छब्बीस जनवरी है, दूसरे उँगलियाँ उठा-उठाकर कह रहे थे, यह श्यामकुमार भागा जा रहा है। क्यों ? किसी प्रशंसक ने सात सवाल एक साथ कर दिए थे ।

"विमल, यह किस ओर बहक गए ?"
"नहीं जानता ।"
"रुक जाओ ।"
"क्यों ?"
"उधर कुछ भी नहीं है ।"
"किधर है कुछ ?"

और निखिल ने व्याकुल हो कर अपने सारे वस्त्र तार-तार कर दि और चीख़ उठा—"कहीं भी कुछ नहीं है, सभी ओर यातना ही यातना है अनुभूति की जन्मदायिनी—यातना, सर्व-दुःख-निवारिणी……"

"विमल अब डूड्लिंग बन्द करो, अब तो तुम्हारा कलम चल निकल है ?"

'अश्वमेघ यज्ञ……'

शीर्षक सुन्दर है, हम कहना चाहते थे, लेकिन जो हम कहना चाहते थे वह सब तो रमेश भाई कह गए और हम उनका मुंह देखते रह गए। अब हम क्या कहें, रमेश भाई, आपने धोखा किया, भविष्य में अथवा निकट भविष्य में जब कभी भी हम आपसे मिलेंगे, हम यह कहे बग़ैर नहीं रहेंगे कि रमेश भाई आपने हमें धोखा दिया। चलो अच्छा हुआ, हमें अब कुछ कहने को तो मिल गया, जब कभी आपसे भेंट होती थी तो हमें यही नहीं सूझता था कि हम आपसे क्या कहें, हम बार-बार यही कह दिया करते थे, रमेश भाई चारों ओर आपकी प्रशंसा हो रही है, अब कुछ और भी कह सकेंगे, रमेश भाई इस धोखे के लिए धन्यवाद।

"विमल, अब तुम्हारा हाथ खुल गया है, अब लिखो।"

"बहुत अच्छा।"

विनोद कमरे में बैठा है (श्यामा के इन्तज़ार में नहीं), या कमरा विनोद पर बैठा है, कुछ पता नहीं चलता, दोनों ही बातें हो सकती हैं, तीसरी नहीं हो सकती, जब तीसरी होती है तो बकवास जन्म लेता है, बकवास का जन्म, क्या सुन्दर शीर्षक है, विमल जी, सच कहते हैं आपके शीर्षक सदैव बहुत अनोखे होते हैं, एकदम अछूते, सुनते ही हमारी तो हैरत गुम हो जाती है, मार्मिक, अनुभूतिजन्य, प्रतिभा-सम्पन्न, गगन-भेदी, विमल जी, मत

रहते हैं आपके शीर्षकों के लिए हिन्दी भाषा में यथेष्ट विशेषण उपलब्ध नहीं। आपका यह शीर्षक—एक बात का रहस्य—विमल जी, हमें सोते-जागते आन्दोलित करता रहता है। विमल जी, आपके इस शीर्षक ने तो हमारा सोना दूभर कर रखा है। हम तो यहाँ तक कहेंगे, विमल जी, कि आप और सब कुछ छोड़-छाड़ कर दिन-रात शीर्षक जुटाने में ही यदि जुट जाएँ तो हिन्दी साहित्य का कल्याण हो जाए, मजाक नहीं करते, एक बात कहते हैं, विमल जी, आप जरूर हमारे इस सुझाव पर गौर तो करें ···"

"विमल, तुम फिर······?"

"अच्छा, अच्छा, बोलो मत।"

"आखिर कितनी देर इस तरह··· ··?"

"नई, अपना-अपना तरीका होता है लिखने का।"

"विमल यह तो न लिखने का···।"

"अच्छा, अच्छा, अब रहने भी दो।"

आइए तो आज हम लोग बारी-बारी यह बताने की कोशिश करें कि हम कैसे लिखते हैं, और किसी कार्यक्रम के अभाव में यही ठीक भी रहेगा, और रोचक भी, क्यों विमल जी ? हाँ तो इस तरह से···

"मैं उबलकर लिखता हूँ।"

"मैं पिघल कर।"

"मैं निगल कर।"

"मैं फिसल कर।"

"मैं बिगड़ कर।"

"मैं सँवर कर।"

"मैं कुर्सी पर बैठकर लिखता हूँ।"

"मैं ढीली चारपाई पर बैठ कर।"

"मैं झुक कर लिखता हूँ।"

"मैं अकड़ कर।"

“मुझे लिखने के लिए एकांत चाहिए।”

“और मुझे रमाकांत।”

“मैं लिखते समय सिगरेट पीता हूँ।”

“मैं चाय।”

“मैं चाय कम चीनी वाली।”

“मैं चाय बगैर दूध के।”

“मैं ख़ूने-जिगर।”

“मैं जिगर की ग़ज़लों का रस।”

“मैं गन्ने का रस।”

(देखिए विमल जी, सावधान)

“मैं लिखने से पहले कुछ देर के लिए, अपने मन को शुद्ध करने के लिए कुछ मन्त्रों का उच्चारण करता हूँ।”

“मैं अपनी प्रेमिकाओं के नामों का।”

“मैं दूसरों की प्रेमिकाओं के नामों का।”

“मैं गुनगुनाता हूँ।”

“मैं रोता हूँ।”

“मैं बस धीरे से मुस्कराता रहता हूँ।”

“मैं बस अपने-आप को यही समझाता हूँ—यह न सोचो क्या न पाया, यह कहो क्या मिल गया।”

(विमल जी !)

“मैं लिखूं-न-लिखूं, बैठता हर रोज़ हूं।”

“मैं बैठूं-न-बैठूं लिखता हर रोज़ हूँ।”

“मैं रुक-रुककर लिखता हूँ।”

“मैं अगर रुक जाऊँ तो फिर बस घंटों रुका ही रहता हूँ।”

“मैं लिखने के पहले सोचता हूँ।”

“मैं लिखने के बाद।”

“मैं न लिखने के पहले न बाद।”

"I write when I must."

"I, when I burst."

"मैं डूबकर लिखता हूँ।"

"मैं ऊबकर।"

"मैं खीझकर।"

"मैं रीझकर।"

"लिखते समय मेरी मनःस्थिति पागलों की-सी होती है। इसीलिए मेरी बहुत-सी कहानियों का शीर्षक है—एक मनःस्थिति।"

"आप मानें या न मानें मैंने अपनी सारी लम्बी कहानियाँ सड़क के किनारे बैठकर लिखी हैं, जनप्रवाह मेरे निकट नदी के प्रवाह से कहीं अधिक शान्तिप्रद है।"

"आप मानें या न मानें मैंने भी इस दृष्टिकोण से विवश हो कर एक महाकाव्य की रचना बस स्टैंड पर खड़े होकर की है।"

"आप मानें या न मानें मैंने अपने तमाम ड्रामे एक टाँग पर खड़े हो कर लिखे हैं।"

"और आप यह सुनकर स्तम्भित रह जाएँगे कि मैंने अपने ड्रामों की आलोचना उलटा-लटककर की थी।"

(विमलजी !!!)

"मेरे लिखने का उद्देश्य अपनी शंकाओं का समाधान है।"

"मैं अपनी कुण्ठाओं से बाध्य होकर लिखता हूँ।"

"मैं आरम्भ में न जाने किस प्रेरणा से लिखा करता था किन्तु अब तो आदत से लाचार हो गया हूँ।"

"मैं ज़िन्दगी का रहस्य ढूँढने के लिए लिखता हूँ, लेकिन यह रहस्योद्घाटन न जाने कब होगा।"

"मैं आत्म-ज्ञान की वृद्धि के लिए लिखता हूँ, लेकिन न जाने क्यों क्रमशः आत्मविस्मरण ही मेरे सृजन का स्रोत बनता चला जा रहा है।"

"मैं इसलिए लिखता हूँ कि मेरे दोस्त-यार, सगे-सम्बन्धी प्रायः सभी

लिखते हैं।"

"मैं लिखता हूँ, किसलिए, बड़ा टेढ़ा सवाल है और टेढ़े सवालों का जवाब देते समय मेरा मुँह भी कुछ टेढ़ा हो जाता है और मेरी वाणी टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर चल निकलती है। मेरा कहने का अभिप्राय कुछ भी हो, आपको उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए क्योंकि जहाँ तक मेरा अनुमान है, हो सकता है मैं ग़लत होऊँ, आपको और भी तो चिन्ताएँ होंगी, हर एक को होती हैं, मेरा मतलब है, it is nothing unusual, तो संक्षेप में मैं यही कह देने की कोशिश करूँगा कि अपने लिखने या न लिखने का (क्योंकि मेरे निकट लिखने का उतना ही महत्व है जितना कि न लिखने का, या क़रीब-क़रीब उतना ही, यदि कुछ अन्तर है भी तो नगण्य है) उद्देश्य खोजने की मूर्खता, आप मुझे क्षमा करेंगे, मैंने अभी तक, यानी आज तक, कल या परसों की बात मैं कह नहीं सकता, की नहीं; क्योंकि जैसा कि मैंने आरम्भ में भी कहा था और आपको याद होगा, अगर नहीं है तो बहरहाल होना चाहिए, यह प्रश्न इतना टेढ़ा है, टेढ़े से मेरा मतलब आप कुछ ऐसा-वैसा न समझ लें, इसलिए शायद मुझे टेढ़ेपन की परिभाषा कर देनी चाहिए, और अगर आप सबकी अनुमति हो तो मैं ऐसा करने का उपक्रम करूँ, क्योंकि वास्तविक बात यही है कि बग़ैर इस परिभाषा के मेरे विचार में काम चलेगा नहीं, यानी ज़्यादा देर तक नहीं चलेगा, सो यह मानते हुए कि आप सब इस पर सहमत हैं कि काम तो किसी-न-किसी तरह चलाना ही चाहिए, मैं अगली बार इस विषय पर, यानी 'टेढ़ेपन की परिभाषा और उसका मेरे लिखने से सम्बन्ध' पर एक लेख लिखकर ले आऊँगा और अगर मैं किसी कारणवश, आप जानते हैं कि······(ख़ैर मैं देख रहा हूँ कि बहुत से लोग मन-ही-मन अगली बार न आने का निश्चय कर रहे हैं।)"

हम इन्हें धन्यवाद देते हैं कि इन्होंने आख़िर अपना वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया, कृतज्ञता के बोझ से हमारी आँखें इतनी भारी हो गई हैं कि हमें छूटते ही किसी अत्यन्त जटिल समस्या पर विचार करना आरम्भ कर देना

चाहिए। मेरा सुझाव है कि लगे हाथों हम आज उन विषयों की सूची तैयार कर लें जिन पर हम अगले दशक में यदा-कदा विचार-विमर्श करेंगे। पिछले तीन वर्षों से हम इस काम को ठेलते चले आ रहे हैं। तो साहब इस तरफ से...

१—हिन्दी साहित्य में द्वेष-प्रेम।
२—हिन्दी साहित्य में पत्नी-विरोध।
३—हिन्दी साहित्य—एक विरोधाभास।
४—हिन्दी साहित्य में नारी प्रकाशकों का स्थान।
५—हिन्दी साहित्य में प्रश्नों की जलन।
६—हिन्दी साहित्य और प्रयोगवाद।
७—हिन्दी साहित्य और विटामिन ई कॉम्पलेक्स।
८—हिन्दी साहित्य में तिकड़मबाज़ी।
९—हिन्दी साहित्य में जिल्द-साज़ी।
१०—हिन्दी साहित्य में परलोक-प्रियता।
११—हिन्दी साहित्य में ऊँट की सवारी।
१२—हिन्दी साहित्य में उर्दू वालों की भरमार।
१३—हिन्दी साहित्य में दोस्ती-मार।

और अन्तिम है—हिन्दी साहित्य पर खुदा (अर्थात् आकाशवाणी) की मार।

(विमल जी, आप कभी गम्भीर भी होंगे या नहीं ?)

विमल खिलखिलाकर उठ खड़ा हुआ। कुछ देर यूँही खड़ा रहा। फिर लपककर शीशे के सामने जा खड़ा हुआ। अपनी विद्रूप आकृति देखकर उसने आँखें मींच लीं। फिर सहसा मुट्ठियाँ भींचकर पागलों की तरह इधर-उधर भटकने लगा। और फिर धप्प से नीचे बैठ गया, क्योंकि भटकते-भटकते कुर्सी की नोक से ठोकर खाकर उसके दोनों घुटने छिल गए थे। उन्हीं छिले हुए घुटनों में अपना शीश नवाकर विमल न जाने कितनी देर

इसी मुर्ग़-मुद्रा में पड़ा रहा।

"बिमल, कहाँ खो गए थे ?"

"घुटनों की गहराइयों में।"

"बिमल के क्लांत होंठों पर एक मुस्कराहट ने दम तोड़ना आरम्भ किया।"

"बिमल, क्या कर रहे हो ?"

"मुस्करा रहा हूँ।"

"किस बात पर ?"

"यूँही।"

"बिमल, आज कहीं नहीं जाओगे ?"

"नहीं।"

"आज इतवार है !"

"है तो !"

"कहीं नहीं जाओगे ?"

"नहीं !"

"क्यों ?"

"वैसे ही।"

"विमल, तुम क्या करना चाहते हो ?"

"किससे ?"

"विमल, क्या कर रहे हो ?"

"भीतर झाँक रहा हूँ।"

"कुछ दिखाई दिया ?"

"कुछ नहीं।"

"विमल, क्या कर रहे हो ?"

"आत्म-निरीक्षण।"

"कुछ हाथ लगा ?"
"कुछ भी नही ।"

"विमल, तुम क्या चाहते हो ? क्या चाहते हो ? क्या चाहते हो ? क्या चाहते हो......। विमल शादी कर लो !"
"किससे ?"
"मुझी से ।"
"मुश्किल बात है ।"

"विमल, तुम्हारी उम्र क्या है ?"
"यह न पूछो ।"
"क्यो ?"
"शर्म आती है ।"
"क्यों ?"
"यह भी न पूछो ।"
"क्यो ?"
"तुम हँसोगे ।"
"बता दो ?"
"समझ जाओ ।"
"समझ गया ।"
"विमल, क्या कर रहे हो ?"
"आत्म-विश्लेषण ।"
"कुछ उपलब्धि हुई ?"
"नही !"
"क्यों ?"
"नही जानता !"
"जानना चाहोगे ?"

बजाय क्रमश: पुनर्जीवित होती जा रही हो।

"रमू, मिसिज किंग क्या सचमुच नीचे खड़ी हैं ?"

"Seek and it shall be given unto thee !"

"उसे ऊपर ही बुलालो रमू, मैं आज कहीं जाऊँगा नहीं। मैं भीष्म-तिज्ञा-बद्ध हूँ।"

"My conscience clear my chief defence !"

जब विमल ने मेज़ पर बिखरे हुए कागज़ों को समेटने के लिए हाथ ढाया तो रमू ने दोनों हाथ ऊपर उठाकर, एक दीर्घ-निश्वास लेते हुए हा, "O father let my country awake !" विमल कागज़ों को डकर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा। रमू कह रहा था—

Father, father, mercy take,
Poetry I shall never make !
And if ever I do by mistake,
I shall turn it into prose.

ी बीच में रानी उर्फ मिसिज किंग भी ऊपर आ गई थी और विमल से हाथ मिला रहा था।

बजाय क्रमशः पुनर्जीवित होती जा रही हो।

"रमू, मिसिज किंग क्या सचमुच नीचे खड़ी हैं ?"

"Seek and it shall be given unto thee !"

"उसे ऊपर ही बुला लो रमू, मैं आज कहीं जाऊँगा नहीं। मैं भीष्म-प्रतिज्ञा-बद्ध हूँ।"

"My conscience clear my chief defence !"

जब विमल ने मेज पर बिखरे हुए कागजों को समेटने के लिए हाथ बढ़ाया तो रमू ने दोनों हाथ ऊपर उठाकर, एक दीर्घ-निश्वास लेते हुए कहा, "O father let my country awake !" विमल कागजों को छोड़कर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा। रमू कह रहा था—

Father, father, mercy take,
Poetry I shall never make !
And if ever I do by mistake,
I shall turn it into prose.

इसी बीच में रानी उर्फ़ मिसिज किंग भी ऊपर आ गई थी और विमल उससे हाथ मिला रहा था।

मेरा दुश्मन

वह इस समय दूसरे कमरे में वेहोश पड़ा है। आज मैंने उसकी शराव में कोई चीज़ मिला दी थी, कि ख़ाली शराव वह शरवत की तरह गट-गट पी जाता है, और उस पर कोई ख़ास असर नहीं होता। आँखों में लाल डोरे-से झूलने लगते हैं, माथे की शिकनें पसीने में भीगकर दमक उठती हैं, होंठों का ज़हर और उजागर हो जाता है, और वस—होशोहवास वदस्तूर क़ायम रहते हैं।

हैरान हूँ कि यह तरकीव मुझे पहले कभी क्यों नहीं सूझी। शायद सूझी भी हो, और मैंने कुछ सोचकर इसे दवा दिया हो। मैं हमेशा कुछ-न-कुछ सोचकर कई वातों को दवा जाता हूँ। आज भी मुझे अन्देशा तो था कि वह पहले ही घूँट में ज़ायका पहचानकर मेरी चोरी पकड़ लेगा। लेकिन गिलास ख़त्म होते-होते उसकी आँखें वुझने लगी थीं और मेरा हौसला वढ़ गया था। जी में आया था कि उसी क्षण उसकी गरदन मरोड़ दूं, लेकिन फिर नतीजों की कल्पना से दिल दहलकर रह गया था। मैं समझता हूं कि हर वुज़दिल आदमी की कल्पना वहुत तेज़ होती है, हमेशा उसे हर ख़तरे से वचा ले जाती है। फिर भी हिम्मत वांधकर मैंने एक वार सीधे उसकी ओर

देखा ज़रूर था। इतना भी क्या कम है कि साधारण हालात में मेरी निगाहें सहमी हुई-सी उसके सामने इधर-उधर फड़फड़ाती रहती है। साधारण हालात में मेरी स्थिति उसके सामने बहुत असाधारण रहती है।

ख़ैर, अब उसकी आँखें बन्द हो चुकी थीं और सर झूल रहा था। एक ओर लुढ़ककर गिर जाने से पहले उसकी बाँहें दो लदी हुई ढीली टहनियों की सुस्त-सी उठान के साथ मेरी ओर उठ आई थीं। उसे इस तरह लाचार देखकर भ्रम हुआ था कि वह दम तोड़ रहा है।

लेकिन मैं जानता हूँ कि वह मूज़ी किसी भी क्षण उछलकर खड़ा हो सकता है। होश सँभालने पर वह कुछ कहेगा नहीं। उसकी ताक़त उसकी ख़ामोशी में है। बातें वह उस ज़माने में भी बहुत कम किया करता था, लेकिन अब तो जैसे बिल्कुल गूँगा हो गया हो।

उसकी गूँगी अवहेलना की कल्पना-मात्र से मुझे दहशत हो रही है। कहा न, कि मैं एक बुज़दिल इन्सान हूँ।

वैसे मैं न जाने कैसे समझ बैठा था कि इतने अर्से की अलहदगी के बाद अब मैं उसके आतंक से पूरी तरह आज़ाद हो चुका हूँ। इसी ग़लतफ़हमी में शायद उस रोज़ उसे मैं अपने साथ ले आया था। शायद मन में कहीं उस पर रौब गाँठने, उसे नीचा दिखाने की दुराशा भी रही हो। हो सकता है कि मैंने सोचा हो कि वह मेरी जीती-जागती ख़ूबसूरत बीवी, चहकते-मटकते तन्दुरुस्त बच्चों, और आरास्ता-पैरास्ता आलीशान कोठी को देखकर ख़ुद ही मैदान छोड़कर भाग जाएगा, और हमेशा के लिए मुझे उससे निजात मिल जाएगी। शायद मैं उस पर यह साबित कर दिखाना चाहता था कि उससे पीछा छुड़ा लेने के बाद किस ख़ुशगवार हद तक मैंने अपनी ज़िन्दगी को सँभाल-सँवार लिया है।

लेकिन ये सब लँगड़े बहाने हैं। हक़ीक़त शायद यह है कि उस रोज़ मैं उसे अपने साथ नहीं लाया था, बल्कि वह ख़ुद ही मेरे साथ चला आया था, जैसे मैं उसे नहीं बल्कि वह मुझे नीचा दिखाना चाहता हो। ज़ाहिर है कि उस समय यह बारीक बात मेरी समझ में नहीं आई होगी। मौक़े पर ठीक

ख्वाहिश हो।

फिर माला ने मौका पाते ही मुझे अलग ले जाकर डाँटना-डपटना शुरू कर दिया था—मैं पूछती हूँ कि यह तुम किस आवारागर्द को पकड़कर साथ ले आए हो ? जरूर कोई तुम्हारा पुराना दोस्त होगा ? है न ? इत्ते बरस शादी को हो चले; लेकिन तुम अभी तक वैसे-के-वैसे ही रहे। मेरे बच्चे उसे देखकर क्या कहेंगे ? पडोसी क्या सोचेंगे ? अब कुछ बोलोगे भी ?

मैं हैरान था कि क्या बोलूं ! माला के सामने मैं बोलता कम हूं, ज्यादा

कामयाब शादी की बुनियाद भी इसी पर कायम है—उसकी हर बात हमेशा सही होती है, और मैं अपनी हर गलती को चुपचाप और फौरन कबूल कर लेता हूं। ऊपर से वह कुछ भी क्यों न कहे, उसे मेरी फरमाबरदारी पर पूरा भरोसा है। बीच-बीच में महज मुझे खुश कर देने के खयाल से वह इस क़िस्म की शिकायतें जरूर कर दिया करती है—तुम्हें न जाने हर मामूली-से-मामूली बात पर मेरे खिलाफ डट जाने में क्या मजा आता है ? मानती हूँ कि तुम मुझसे कहीं ज्यादा समझदार हो, लेकिन कभी-कभी मेरी बात रखने के लिए ही सही···वगैरह-वगैरा।

मुझे उसके ये झूठे उलाहने बहुत पसन्द हैं, गो मैं उनसे ज्यादा खुश नहीं हो पाता। फिर भी वह समझती है कि इनसे मेरा भ्रम बना रहता है, और मैं जानता हूँ कि बागडोर उसी के हाथ में रहती है। और यह ठीक ही है।

तो माला दांत पीसकर कह रही थी—अब कुछ बोलोगे भी ? मेरे बच्चे पार्क से लौटकर इस मनहूस आदमी को बैठक में बैठा देखेंगे, तो क्या कहेंगे ? उन पर क्या असर होगा ? उफ, इतना गन्दा आदमी ! सारा घर महक रहा है। बताओ न, मैं अपने बच्चों से क्या कहूँगी ?

अब जाहिर है कि मैं माला को कुछ भी नहीं बता सकता था। सो मैं सर झुकाए खड़ा रहा, और वह मुंह उठाए बहुत देर तक बरसती रही।

वैसे यहाँ यह साफ़ कर दूँ कि वे बच्चे माला अपने साथ नहीं लाई थी। वे मेरे भी उतने ही हैं जितने कि उसके, लेकिन ऐसे मौक़ों पर वह हमेशा 'मेरे बच्चे' कहकर मुझसे उन्हें यूँ अलग कर लिया करती है, जैसे कोई कीचड़ से लाल निकाल रहा हो। कभी-कभी मुझे इस बात पर बहुत दु:ख भी होता है, लेकिन फिर ठण्डे दिल से सोचने पर महसूस होता है कि शारीरिक सचाई कुछ भी हो, रूहानी तौर पर हमारे सभी बच्चे माला के ही हैं। उनके रंग-ढंग में मेरा हिस्सा बहुत कम है। और यह ठीक ही है, क्योंकि अगर वे मुझ पर जाते तो उन्हें भी मेरी तरह सीधा होने में न जाने कितनी देर लग जाती। मैं ख़ुश हूँ कि उनका भविष्य ख़ूब रौशन है और उस रौशनी में मेरा हाथ बस इतना ही है कि मैं उनका क़ानूनी, और शायद जिस्मानी, बाप हूँ, उनके लिए पैसे कमाता हूँ, और दिलोजान से उनकी माँ की सेवा में दिन-रात जुटा रहता हूँ।

ख़ैर! कुछ देर यूँही सर नीचा किए खड़े रहने के बाद आख़िर मैंने निहायत आजिज़ाना आवाज़ में कहना शुरू किया था—अरे भई, मैं तो उस कमबख़्त को ठीक तरह से पहचानता भी नहीं, उससे दोस्ती का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। अब अगर रास्ते में कोई आदमी मिल जाए तो…।

न जाने मेरे फ़िक़रे का अन्त क्योंकर होता! शायद होता भी कि नहीं, लेकिन माला ने बीच में ही पाँव पटककर कह दिया—झूठ, सरासर झूठ!

यह कहकर वह अन्दर चली गई, और मैं कुछ देर तक और वहीं सर नीचा किए खड़ा रहने के बाद वापस उस कमरे में लौट आया, जहाँ बैठा वह बीड़ी पी रहा था और मुस्करा रहा था, जैसे सब जानता हो कि मैं किस मरहले से गुज़रकर आ रहा हूँ।

●

अब हुआ दरअसल यह था कि उस शाम माला से, कुछ दूर अकेला घूम आने की इजाज़त माँगकर मैं यूँही बिना मतलब घर से बाहर निकल गया था। आमतौर पर वह ऐसी इजाज़तें आसानी से नहीं देती, और न ही मैं माँगने की हिम्मत कर पाता हूँ। बिना मतलब घूमना उसे बहुत बुरा लगता है।

हीं भी जाना हो, किसी से भी मिलना हो, कुछ भी करना या न करना ा, मतलब का साफ़ और सही फ़ैसला वह पहले से ही कर लेती है। ठीक ी करती है। मैं उनकी समझदारी को दाद देता हूँ। वैसे घर से दूर अकेला ं किसी मतलब से भी नहीं जा पाता। माला की सोहबत की कुछ ऐसी ादत-सी पड़ गई है, कि उसके बग़ैर सब सूना-सूना-सा लगता है। जब वह ाथ रहती है तो किसी क़िस्म का कोई ऊल-जलूल विचार मन में उठ ही ही पाता, हर चीज़ ठोस और बामतलब दिखाई देती है। अन्दर की हालत ी रहती है जैसे माला के हाथों सजाया हुआ कोई कमरा हो, जिसमें हर ीज़ क़रीने से पड़ी हो, बेक़ायदगी की कोई गुंजायश न हो। और जब वह ास नहीं होती, तो वही होता है जो उस शाम हुआ, या फिर उसी क़िस्म ा कोई और हादसा, क्योंकि उससे पहले वैसी बात कभी नहीं हुई थी।

तो उस शाम न जाने किस धुन में मैं घर से बहुत दूर निकल गया था। ामतौर पर घर से दूर रहने पर भी मैं घर ही के बारे में सोचता रहता हूँ सलिए नहीं कि घर में किसी क़िस्म की कोई परेशानी है। गाड़ी न सिर्फ़ क रही है, बल्कि खूब चल रही है। बागडोर जब माला-जैसी औरत के ाथ हो, तो चलेगी नहीं तो और करेगी भी क्या? नहीं, घर में कोई परे-ानी नहीं—अच्छी तनखाह, अच्छी बीवी, अच्छे बच्चे अच्छे बा-रसूख ोस्त, उनकी बीवियाँ भी खूब हट्टी-कट्टी और अच्छी, अच्छा सरकारी मकान, च्छा खुशनुमा लॉन, पास-पड़ोस भी अच्छा, महँगाई के बावजूद दोनों वक्त च्छा खाना, अच्छा बिस्तर, और अच्छी बिस्तरी ज़िन्दगी। मैं पूछता हूँ, स सबके अलावा और चाहिए भी क्या एक अच्छे इन्सान को? फिर भी केला होने पर घरेलू मामलों को बार-बार उलट-पलटकर देखने से वैसा ी इत्मीनान मिलता है, जैसा किसी भी सेहतमन्द आदमी को बार-बार आईने में अपनी सूरत देखकर मिलता होगा। मेरा मतलब है कि वक्त अच्छी तरह से कट जाता है, ऊब नहीं होती। यह भी माला के ही सुप्रभाव का फल है, नहीं तो एक ज़माना था कि मैं हरदम ऊब का शिकार रहा करता था।

हो सकता है कि उस शाम दिमाग़ कुछ देर के लिए उसी गुज़रे हुए ज़माने की ओर भटक गया हो। कुछ भी हो, मैं घर से बहुत दूर निकल गया था, और फिर अचानक वह मेरे सामने आ खड़ा हुआ था।

महसूस हुआ था जैसे मुझे अकेला देखकर घात में बैठे हुए किसी खतरनाक अजनबी ने ही रास्ता रोक लेना चाहा हो। मैं ठिठककर रुक गया था। उसकी सुती हुई आँखों से फिसलकर मेरी निगाह उसकी मुस्कराहट पर जा टिकी थी, जहाँ अब मुझे उसके साथ बिताए हुए उस सारे गर्द-आलूद ज़माने की एक टिमटिमाती हुई-सी झलक दिखाई दे रही थी। महसूस हो रहा था कि बरसों तक रूपोश रहने के बाद फिर मुझे पकड़कर किसी के सामने पेश कर दिया गया हो। मेरा सर इस पेशी के ख़याल से दबकर झुक गया था।

कुछ, या शायद कितनी ही देर हम सड़क के उस नंगे और आवारा अँधेरे में एक-दूसरे के रूबरू खड़े रहे थे। अगर कोई तीसरा उस समय देख रहा होता, तो शायद समझता कि हम किसी लाश के सिरहाने खड़े कोई प्रार्थना कर रहे हैं, या एक-दूसरे पर झपट पड़ने से पहले किसी मंत्र का जाप।

वैसे यह सच है कि उसे पहचानते ही मैंने माला को याद करना शुरू कर दिया था, कि हर संकट में मैं हमेशा उसी का नाम लेता हूँ। साथ ही वहाँ से दुम दबाकर भाग उठने की ख्वाहिश भी मन में उठती रही थी। एक उड़ती हुई-सी तमन्ना यह भी हुई थी कि वापस घर लौटाने के बजाय चुपचाप उस कमबख्त के साथ हो लूँ, जहाँ वह ले जाना चाहे चला जाऊँ, और माला को खबर तक न हो। इस विचार पर तब भी मैं बहुत चौंका था, और अभी तक हैरान हूँ, क्योंकि आखिर उसी से पीछा छुड़ाने के लिए ही तो मैंने माला की गोद में पनाह ली थी। अगर आज से कुछ बरस पहले मैंने उसके खिलाफ़ बग़ावत न की होती तो···। लेकिन उस भागने को बग़ावत का नाम देकर मैं अपने-आपको धोखा दे रहा हूँ, मैंने सोचा था, और मेरा मुँह शर्म के मारे जल उठा था। मेरा मुँह अक्सर इस आग में जलता रहता है।

इस हरामज़ादे ने ज़रूर मेरी सारी परेशानी को भाँप लिया होगा। उससे मेरी कोई कमज़ोरी छिपी नहीं, और उससे भागकर माला की गोद में पनाह लेने की एक बड़ी वजह यही थी। उसकी हँसी मुझे सूखे पत्तों की हैबतनाक खड़खड़ाहट सुनाई दे रही थी, और उस खड़खड़ाहट में उसके साथ गुज़ारे हुए ज़माने की बेशुमार बातें आपस में टकरा रही थीं। बड़ी मुश्किल से आँख उठाकर उसकी ओर देखा था। उसका हाथ मेरी तरफ़ बढ़ा हुआ था। मैं सिहरकर दो क़दम पीछे हट गया था, और उसकी हँसी और ऊँची हो गई थी। भिंचे हुए दाँतों से मैंने उसकी आँखों का सामना किया था। अपना हाथ उसके खुरदरे हाथ में देते हुए और उसकी साँसों की बदबूदार हरारत अपने चेहरे पर झेलते हुए मैंने महसूस किया था जैसे इतनी मुद्दत आज़ाद रह लेने के बाद फिर अपने-आपको उसके हवाले कर दिया हो। अजीब बात है, अहसास से जितनी तकलीफ़ मुझे होनी चाहिए थी, उतनी हुई नहीं थी। शायद हर भगोड़ा मुजरिम दिल से यही चाहता है कि कोई उसे पकड़ ले।

घर पहुँचने तक कोई बात नहीं हुई थी। अपनी-अपनी ख़ामोशी में लिपटे हुए हम धीमे-धीमे चल रहे थे, जैसे कन्धों पर कोई लाश उठाए हुए हों।

●

सो, जब माला की डाँट-डपट सुन लेने के बाद, मुँह बनाए, मैं वापस बैठक में लौटा, तो वह बदज़ात मज़े में बैठा बीड़ी पी रहा था। एक क्षण के लिए भ्रम हुआ, जैसे वह कमरा उसी का हो। फिर कुछ सँभलकर, उससे नज़र मिलाए बग़ैर, मैंने कमरे की सारी खिड़कियाँ खोल दीं, पंखे को और तेज़ कर दिया, एक झुँझलाई हुई ठोकर से उसके जूतों को सोफ़े के नीचे धकेल दिया, रेडियो चलाना ही चाहता था कि उसकी फटी हुई हँसी सुनाई दी, और मैं बेबस हो, उससे दूर हटकर चुपचाप बैठ गया।

जी में आया कि हाथ बाँधकर उसके सामने खड़ा हो जाऊँ, सारी हक़ीक़त सुनाकर कह दूँ—देखो दोस्त, अब मेरे हाल पर रहम करो, और माला

के आने से पहले चुपचाप यहाँ से चले जाओ, वरना नतीजा बहुत बुरा होगा।

लेकिन मैंने कुछ कहा नहीं। कहा भी होता तो सिवाय एक और ज़हरीली हँसी के उसने मेरी अपील का कोई जवाब न दिया होता। वह बहुत ज़ालिम है, हर बात की तह तक पहुँचने का क़ायल, और भावुकता से उसे सख़्त नफ़रत है।

उसे कमरे का जायज़ा लेते देख मैंने दबी निगाह से उसकी ओर देखना शुरू कर दिया। टाँगें समेटे वह सोफ़े पर बैठा हुआ एक जानवर-सा दिखाई दिया। उसकी हालत बहुत ख़स्ता दिखाई दी, लेकिन उसकी शक्ल अब भी मुझसे कुछ-कुछ मिलती थी। इस विचार से मुझे कोफ़्त भी हुई, और एक अजीब क़िस्म की ख़ुशी भी महसूस हुई। एक ज़माना था जब वही एक मात्र मेरा आदर्श हुआ करता था, जब हम दोनों घंटों एक साथ घूमा करते थे, जब हमने बार-बार कई नौकरियों से एक साथ इस्तीफ़े दिए थे, कुछ-एक से एक साथ निकाले भी गए थे, जब हम अपने-आपको उन तमाम लोगों से बेहतर और ऊँचा समझते थे जो पिटी-पिटाई लकीरों पर चलते हुए अपनी सारी ज़िन्दगी एक बदनुमा और रवायती घरौंदे की तामीर में बरबाद कर देते हैं, जिनके दिमाग़ हमेशा उस घरौंदे की चहारदीवारी में क़ैद रहते हैं, जिनके दिल सिर्फ़ अपने बच्चों की किलकारियों पर ही झूमते हैं, जिनकी बेवक़ूफ़ बीवियाँ दिन-रात उन्हें तिगनी का नाच नचाती हैं, और जिन्हें अपनी सफ़ेदपोशी के अलावा और किसी बात का कोई ग़म नहीं होता। कुछ देर मैं उस ज़माने की याद में डूबा रहा। महसूस हुआ, जैसे वह फिर उसी दुनिया से एक पैग़ाम लाया हो, फिर मुझे उन्हीं रोमानी वीरानों में भटका देने की कोशिश करना चाहता हो, जिनसे भागकर मैंने अपने लिए एक फूलों की सेज सँवार ली है, जिस पर माला क़रीब हर रात मुझसे मेरी फ़रमाबरदारी का सबूत तलब किया करती है, और जहाँ मैं बहुत सुखी हूँ।

वह मुस्करा रहा था, जैसे उसने मेरे अन्दर झाँक लिया हो। उसे इस तरह आसानी से अपने ऊपर क़ाबिज़ होते देख, मैंने बात बदलने के लिए

कहा—कितने रोज यहाँ ठहरोगे ?

उसकी हँसी से एक बार फिर हमारे घर की सजी-सँवरी फिजा दहल गई, और मुझे खतरा हुआ कि माला उसी दम वहाँ पहुँचकर उसका मुँह नोच लेगी। लेकिन यह खतरा इस बात का गवाह है कि इतने बरसों की दासता के बावजूद मैं अभी तक माला को पहचान नही पाया। थोडी ही देर में वह एक बहुत खूबसूरत साडी पहने, मुस्कराती-इठलाती हुई हमारे सामने आ खड़ी हुई। हाथ जोडकर बड़े दिलफरेब अन्दाज में नमस्कार करती हुई बोली—आप बहुत थके हुए दिखाई देते हैं, मैंने गरम पानी रखवा दिया है, आप 'बाथ' कर लें, तो कुछ पीकर ताज़ादम हो जाएँ, खाना तो हम लोग देर से ही खाएँगे।

मैं बहुत खुश हुआ। अब मामला माला ने अपने हाथ में ले लिया था, और मैं यूँ ही परेशान हो रहा था। मन हुआ कि उठकर माला को चूम लूँ। मैंने कनखियो से उस हरामजादे की तरफ देखा। वह वाकई सहमा हुआ-सा दिखाई दिया। मैंने सोचा, अब अगर वह खुद-ब-खुद ही न भाग उठा, तो मैं समझूँगा कि माला की सारी समझ-सीख और रंग-रूप बेकार है। कितना लुत्फ़ आए अगर वह कमबख्त भी भाग खड़ा होने के बजाय माला के दाँव मे फँस जाए, और फिर मैं उससे पूछूँ—अब बता, साले, अब बात समझ मे आई ? मैंने आँखें बन्द कर ली, और उसे माला के इर्द-गिर्द नाचते हुए, उस पर फिदा होते हुए, उसके साथ लेटे हुए देखा। एक अजीब राहत का एहसास हुआ। आँखें खोलीं तो वह गुसलखाने मे जा चुका था, और माला झुकी सोफे को ठीक कर रही थी। मैंने उसकी आँखों में आँखें डालकर मुस्कराने की कोशिश की, लेकिन फिर उसकी तनी हुई सूरत से घबराकर नजरें झुका ली। जाहिर था कि उसने अभी मुझे माफ नहीं किया था।

नहाकर वह बाहर निकला, तो उसने मेरे कपड़े पहने हुए थे। इस बीच माला ने बीअर निकाल ली थी और उसका गिलास भरते हुए पूछ रही थी—आप खाने में मिर्च कम लेते हैं या ज्यादा ? मैंने बहुत मुश्किल से हँसी

पर क़ाबू किया—उस साले को खाना ही कब मिलता होगा, मैं सोच रहा था, और माला की होशियारी पर खुश हो रहा था।

कुछ देर हम बैठे पीते रहे, माला उससे घुल-मिलकर बातें करती रही, उससे छोटे-छोटे सवाल पूछती रही—आपको यह शहर कैसा लगा? बीअर ठंडी तो है न? आप अपना सामान कहाँ छोड़ आए?—और वह बगलें झाँकता रहा। हमारे बच्चों ने आकर अपने 'अंकल' को ग्रीट किया, बारी-बारी उसके घुटनों पर बैठकर अपना नाम वग़ैरा बताया, एक-दो गाने गाए, और फिर 'गुड नाइट' कहकर अपने कमरे में चले गए। माला की मीठी बातों से यूँ लग रहा था जैसे हमारे अपने ही हल्के का कोई बेतकल्लुफ़ दोस्त कुछ दिनों के लिए हमारे पास आ ठहरा हो, और उसकी बड़ी-सी गाड़ी हमारे दरवाज़े के सामने खड़ी हो।

मैं बहुत खुश हुआ था, और जब माला खाना लगवाने के लिए बाहर गई, तो उस शाम पहली बार मैंने बेधड़क उस कमीने की तरफ़ देखा। वह तीन-चार गिलास बीअर के पी चुका था, और उसके चेहरे की ज़र्दी कुछ कम हो चुकी थी। लेकिन उसकी मुस्कराहट में माला के बाहर जाते ही फिर वही ज़हर और चैलेंज आ गया था, और मुझे महसूस हुआ जैसे वह कह रहा हो—बीबी तुम्हारी मुझे पसन्द है, लेकिन बेटे! उसे खबरदार कर दो, मैं इतना पिलपिला नहीं जितना वह समझती है।

एक क्षण के लिए फिर मेरा जोश कुछ ढीला पड़ गया। लगा जैसे बात इतनी आसानी से सुलझने वाली नहीं। याद आया कि खूबसूरत और शोख औरतें उस ज़माने में भी उसे बहुत पसन्द थीं, लेकिन उनका जादू ज़्यादा देर तक नहीं चलता था। फिर भी, मैंने सोचा, बात अब मेरे हाथ से निकल गई है, और सिवाय इन्तज़ार के मैं और कुछ नहीं कर सकता था।

खाना उस रोज़ बहुत उम्दा बना था और खाने के बाद माला खुद उसे उसके कमरे तक छोड़ने गई थी। लेकिन उस रात मेरे साथ माला ने कोई बात नहीं की। मैंने कई मजाक किए, कहा—नहा-धोकर वह काफ़ी अच्छा लग रहा था, क्यों? बहुत छेड़-छाड़ की, कई कोशिशें कीं कि सुलहनामा हो

जाए, लेकिन उसने मुझे अपने पास फटकने नहीं दिया। नींद उस रात मुझे नहीं आई, फिर भी अन्दर से मुझे इत्मीनान था कि किसी-न-किसी तरह माला दूसरे रोज उसे भगा सकने में ज़रूर कामयाब हो जाएगी।

लेकिन मेरा अन्दाज़ा गलत निकला। माना कि माला बहुत चालाक है, बहुत समझदार है, बहुत मनमोहिनी है, लेकिन उस हरामज़ादे की ढिठाई का भी कोई मुकाबला नहीं। तीन दिन तक माला उसकी खातिर-तवाज़ा करती रही। मेरे कपड़ों में वह अब बिलकुल मुझ जैसा हो गया था, और नज़र यूँ आता था जैसे माला के दो पति हों। मैं तो सुबह-सवेरे गाड़ी लेकर दफ़्तर को निकल जाता था, पीछे उन दोनों में न जाने क्या बातें होती थीं। लेकिन जब कभी उसे मौका मिलता वह मुझे अन्दर ले जाकर डाँटने लगती—अब यह मुरदार यहाँ से निकलेगा भी कि नहीं। जब तक यह घर में है, हम किसी को न तो बुला सकते हैं, न किसी के यहाँ जा सकते हैं। मेरे बच्चे कहते हैं कि इसे बात करने तक की तमीज़ नहीं। आखिर यह चाहता क्या है।

मैं उसे क्या बताता कि वह क्या चाहता है। कभी कहता—थोड़ा सब्र और करो, अब जाने की सोच रहा होगा। कभी कहता—क्या बताऊँ, मैं तो खुद शर्मिन्दा हूँ। कभी कहता—तुमने खुद ही तो उसे सर पर चढ़ा लिया है। अगर तुम्हारा बरताव रूखा होता तो…।

माला ने अपना बरताव तो नहीं बदला, लेकिन चौथे रोज़ अपने बच्चों-सहित घर छोड़कर अपने भाई के यहाँ चली गई। मैंने बहुतेरा रोका, लेकिन वह नहीं मानी। उस रोज़ वह कम्बख़्त बहुत हँसा था, ज़ोर-ज़ोर से, बार-बार।

◆

आज माला को गए पाँच रोज़ हो गए हैं। मैंने दफ़्तर जाना छोड़ दिया है। वह फिर अपने असली रंग में आ गया है। मेरे कपड़े उतार कर उसने फिर अपना वह मैला-सा कुर्ता-पायजामा पहन लिया है। कहता कुछ नहीं, लेकिन मैं जानता हूँ कि वह क्या चाहता है—वह मौका फिर हाथ नहीं आएगा! वह चली गई है। बेहतर यही है कि उसके लौटने से पहले तुम भी यहाँ से भाग चलो। उसकी चिन्ता मत करो, वह अपना इन्तज़ाम खुद

[illegible]

… पड़ रहे हैं, और मैं नहीं